नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 127 • वर्ष 11 अंक 1

फ़रवरी 2009 • तीन रुपये • 12 पृष्ठ

जंगल की आग की तरह फैलती विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी करोड़ों मेहनतकशों के रोज़गार निगल चुकी है

पूँजीवाद के पास इस संकट से निकलने का कोई उपाय नहीं

सम्पादक मण्डल

विश्व पूँजीवाद के तमाम सरगनाओं की हरचंद कोशिशों के बावजूद विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का संकट गहराता ही चला जा रहा है। जंगल की आग की तरह फैलती मन्दी ने सच्चाई से मुँह चुराने और नकारने की उनकी तमाम कोशिशों को नाकाम कर दिया है और अब बड़े पूँजीवादी अर्थशास्त्री भी कहने लगे हैं कि यह 1930 के दशक से भी ज्यादा विकराल मन्दी हो सकती है। लेकिन इस मन्दी से उबरने की कोई भी राह उन्हें नहीं सूझ रही है। टैक्सों के रूप में जनता से उगाहे गये अरबों डालर की रकम पूँजीपतियों को बचाने के लिए खर्च करने के सिवा उनके पास और कोई नुस्खा नहीं है।

मसीहाई अन्दाज में सत्ता में आये अमेरिका के नये राष्ट्रपति बराक ओबामा का मीडिया द्वारा खड़ा किया गया जादू भी पहले दो हफ्तों में ही टाँय-टाँय फिस्स हो चुका है। 820 अरब डालर के उनके पैकेज की घोषणा को अभी से नाकाफी घोषित कर दिया गया है। गुजरे साल की आखिरी तिमाही में अमेरिकी अर्थव्यवस्था...प्रतिशत सिकुड़ गयी। पिछले 27 साल में अमेरिका का यह सबसे खराब आर्थिक प्रदर्शन था। इस साल इसकी हालत और भी खराब होने का अनुमान है। पिछले एक साल में अमेरिका में करीब 40 लाख लोगों की नौकरियाँ सिर्फ पिछले तीन महीने में चली गयीं। रोजगार छिनने की यह रफ्तार इस साल और तेज होने का अनुमान है।। अनुमान के अनुसार अगले दो वर्षों में अमेरिका में करीब एक करोड़ 40 लाख लोगों के रोजगार छिन जायेंगे।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन का अनुमान है कि वर्ष 2009 के अन्त तक दुनिया भर में करीब 5 करोड़ 10 लाख लोगों की छँटनी कर दी जायेगी। जाहिर है वास्तविक संख्या इससे बहुत अधिक होगी क्योंकि दिहाड़ी पर, ठेके पर या अस्थायी कामगारों के रूप में काम करने वाली भारी आबादी के तो ठीक-ठीक आँकड़े ही नहीं रखे जाते हैं। छँटनी और बेरोजगारी का यह तूफान पूरी दुनिया में तबाही मचा रहा है। यूरोप से लेकर जापान तक, चीन से लेकर भारत तक – हर जगह रोज कम्पनियाँ छँटनी कर रही हैं, उत्पादन में कटौती कर रही हैं, ऑर्डर कैंसिल किये जा रहे हैं। चीन में बेरोजगारी की दर 30 प्रतिशत तक पहुँच गयी है।

भारत में सरकार के तमाम आश्वासनों के बावजूद छँटनी का सिलसिला तेज होता जा रहा है। पिछले चार महीनों में 5 लाख नौकरियाँ खत्म होने की तो घोषणा की गयी है। लेकिन बेरोजगारी की वास्तविक स्थिति इससे कहीं ज्यादा गम्भीर है। भारत में करीब 15 करोड़ आबादी को निर्यात क्षेत्र में रोजगार मिला हुआ है। विदेशों से माल के ऑर्डरों में लगातार कमी को देखते हुए अनुमान किया जा रहा है कि इस वर्ष के अन्त तक इसमें से एक करोड़ लोग बेरोजगार हो जायेंगे। जनवरी 2009 में निर्यात में लगभग 20 प्रतिशत की गिरावट आ गयी है। दूसरे औद्योगिक क्षेत्रों की हालत भी ज्यादा अच्छी नहीं है। श्रम और रोजगार मंत्रालय के सर्वेक्षण के मुताबिक हाल के महीनों में आटोमोबाइल, परिवहन और खनन जैसे क्षेत्रों में ''दसियों हजार'' नौकरियाँ छिन गयी हैं। फिक्की के वरिष्ठ उपाध्याक्ष हरीश पति सिंघानिया का कहना है कि भारत में गम्भीर औद्योगिक संकट है और अभी इससे भी ज्यादा रोजगार खत्म हो सकते हैं।

हर पूँजीवादी संकट का सबसे सीधा असर छँटनी और बेरोजगारी बढ़ने के रूप में सामने आता है। वैसे तो पूँजीवादी व्यवस्था में हमेशा ही बेरोजगारों की एक स्थायी ''रिजर्व आर्मी'' बनाये रखी जाती है ताकि पूँजीपति अपनी मर्जी से मजदूरी की दर तय कर सकें। लेकिन आर्थिक संकटों के दौर में यह सिलसिला और तेज हो जाता है। अपना मुनाफा बचाने के लिए पूँजीपति बेमुरौव्वती से मजदूरों की छँटनी कर देते हैं और बचे हुए मजदूरों को बुरी तरह निचोड़ते हैं। ऐसी स्थिति में जो आबादी बेरोजगारी से बची रह जायेगी उसे भी पहले से ज्यादा लूटा-खसोटा जायेगा, मजदूरों के रहे-सहे अधिकार भी छीन लिये जायेंगे। भारत और चीन जैसे देशों में तो पहले से ही तीन चौथाई से अधिक कामगार अस्थायी, ठेके या दिहाड़ी पर काम करते हैं जिन्हें किसी तरह की रोजगार सुरक्षा या बीमा, स्वास्थ्य सहायता जैसी न्यूनतम सुविधाएँ जो दूर, सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती है। बढ़ती मन्दी के दौर में इस भारी मेहनतकश की ही पीठ पर सबसे अधिक कोड़े बरसाये जायेंगे। निम्न मध्यवर्ग की भारी आबादी पर भी मन्दी का भारी असर होगा। पिछले कुछ वर्षों में इस वर्ग के एक हिस्से को सेवा क्षेत्र में, सेल्स आदि में, निजी कम्पनियों के दफ्तरों में जो छोटी-मोटी नौकरियां मिल जा रही थीं, उनमें तेजी से कमी आयेगी। खाते-पीते मध्य वर्ग के एक अच्छे-खासे हिस्से पर भी मन्दी की मार पड़ी रही है। आईटी सेक्टर की 50,000 नौकरियाँ आने वाले महीनों में चली जायेंगी। एक वर्ष के भीतर आईटी क्षेत्र में दस लाख रोजगार पैदा करने के दावे तो कबके हवा हो चुके हैं। मध्य वर्ग के जिस हिस्से को 21वीं सदी के सपने की अफीम चाटकर गुलाबी सपनों की दुनिया में ले जाया गया था उसे भी सच्चाई की कड़वी गोली जमीन पर ले आयेगी। इन गगनविहारियों की अक्ल भी जल्द ही ठिकाने आ जायेगी और उन्हें पता चल जायेगा कि उनकी नियति भी उन करोड़ों उजरती गुलामों की नियति से जुड़ी हुई है जिन्हें वे अब तक हिकारत की नज़र से देखा करते थे।

बढ़ती बेरोजगारी के साथ ही बुनियादी ज़रूरत की चीज़ों की आसमान छूती महँगाई ने आम जनता की बदहाली और बढ़ा दी है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक क़ीमतों में कमी आ रही है लेकिन सच्चाई यह है कि खाने-पीने की चीज़ों से लेकर आम आदमी की जरूरत की हर चीज और महँगी

(पेज 12 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ पेज 5

मज़दूर अखबार - किस मज़दूर के लिए - लेनिन पेज 4

विश्व आर्थिक संकट पेज 6-7

नताशा- एक महिला बोल्शेविक संगठनकर्ता पेज - 11

चीन के नकली कम्युनिस्टों को सता रहा है "दुश्मनों" यानी मेहनतकशों का डर पेज 12

दिल्ली मेट्रो की चकाचौंध के पीछे की काली सच्चाई

ट्रेनों और स्टेशनों को चमकदार बनाये रखने वाले 1400 सफाईकर्मियों को न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं, ठेकेदारों की मर्ज़ी के ग़ुलाम

दिल्ली मेट्रो के चमचमाते ग्रेनाइट के फर्शों व शीशे की दीवारों की चमक जिन सफाईकर्मियों की बदौनत कायम है उनकी जिन्दगी अँधेरे में डूबी हुई है। ठेका कम्पनियों के माध्यम से काम करने वाले सफाईकर्मियों को दिल्ली सरकार द्वारा तय न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती, बाकी सुविधाओं की बात तो दरकिनार। जिस दिल्ली मेट्रो की कार्यकुशलता के सर्वत्र चर्चे होते रहते हैं उसके पीछे का राज़ यह है कि उसका लगभग सारा काम ठेका कंपनियों के माध्यम से करवाया जाता है जो अपने कर्मचारियों को कोई भी सुविधाा नहीं देतीं।

दिल्ली मेट्रो की शान में कसीदे पढ़ने वालों की कोई कमी नहीं। उसके प्रवक्ता मीडिया के माध्यम से दिल्ली मेट्रो की छवि को चमकाने में दिन-रात लगे रहते हैं पर उसे साफ-सुधरा रखने वाले सफाई कर्मियों की बदतर जिंदगी की ओर झाँकने की किसी को भी फुर्सत नहीं है।

दिल्ली मेट्रो के कुल 60 स्टेशनों पर लगभग 1400 सफाई कर्मचारी कार्यरत हैं जो कि आठ-आठ घंटे की शिफ्टों में काम करते हैं। ये सभी सफाईकर्मी ए टु जेड मेंटेनेंस ग्रुप, एक्मे ग्रुप, केशव सिक्योरिटी, आल सर्विसेज़ नामक ठेका कंपनियों के माध्यम दिल्ली मेट्रो के लिए सफाई का काम करते हैं। हर तरह

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

मर्यादपुर में देहाती मज़दूर यूनियन एक बार फिर संघर्ष की तैयारी में

बिगुल संवाददाता

मर्यादपुर, मऊ। देहाती मजदूर यूनियन की अगुवाई में मर्यादपुर के जागरूक ग़रीब अपने बुनियादी अधिकारों से जुड़ी मांगों को लेकर एक बार फिर संघर्ष की तैयारी में जुट गये हैं। यूनियन की ओर से ग्राम सभा में जगह-जगह कैम्प लगाकर जन समस्याओं को मुद्दावार नोट किया जा रहा है और भ्रष्टाचार एवं अनियमितता के विवरण एकत्रित किये जा रहे हैं।

यूनियन के कार्यकताओं ने बताया कि कई जगह ग्राम प्रधान और उसके लग्गुओं-भग्गुओं ने कैम्प लगाने में अड़चनें डालीं और यहाँ तक कि लोगों को कैम्प में आने से रोका। देहाती मजदूर यूनियन के बारे में तरह-तरह की झूठी बातों का प्रचार करके आम ग़रीबों-मज़दूरों में भ्रम फैलाने का काम भी सत्ता के टुकड़खोरों द्वारा किया जा रहा है। लेकिन इस सबके बावजूद काफ़ी बड़ी संख्या में लोग कैम्प में आये और ग्राम पंचायत और अफ़सरशाही के ख़िलाफ़ खुल कर बोले।

मालूम हो कि करीब दो वर्ष पहले यूनियन के नेतृत्व में मऊ में इन माँगों को लेकर जोरदार प्रदर्शन किया गया था। देहाती मजदूर यूनियन के नेतृत्व में उपजिलाधिकारी को सौंपे गये 16 सूत्री मांगपत्रक में निम्नलिखित मांगें शामिल थीं:

राशन कार्ड, मिट्टी के तेल एवं खाद्यान्नों के वितरण में धाँधली की जाँच कर पात्र व्यक्तियों को उचित राशन कार्ड व निर्धारित मात्रा में अनाज और मिट्टी के तेल का वितरण सुनिश्चित कराया जाये, विधवा पेंशन, वृद्धावस्था पेंशन व निर्बल आवास योजना की धाँधलियों की जाँच कर लोगों को योजना का लाभ दिलवाने के साथ ही इन तमाम धाँधालियों में लिप्त लेखपाल, सचिव को बर्खास्त किया जाये। इसके अलावा स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के लिए डीप बोर हैण्ड पम्प लगाये जाये, बन्द पड़े जच्चा-बच्चा केंद्र को चालू कराया जाये, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र खोला जाये और सार्वजनिक उपयोग की भूमि को निजी कब्ज़े से आज़ाद कराया जाये। माँग-पत्रक में नाली-खड़ंजा-चकरोड की भू-अभिलेखों के अनुसार आम पैमाइश कराने की माँग भी शामिल थी जिससे ग्राम सभा में आये दिन होने वाले विवादों से छुटकारा मिल सके।

इस प्रदर्शन के बाद सरकारी अमले ने राशन वितरण आदि योजनाओं, बी.पी.एल. सूची और निर्बल आवास वितरण आदि योजनाओं में हुई धाँधली की जाँच का नाटक भी किया था। कुछ खराब हैंड पाइपों की मरम्मत हुई और कुछ डीप बोर पम्प खुदवाने का आश्वासन भी मिला। एक सड़क का निर्माण भी हुआ। लेकिन जैसे ही जनता का दबाव कमजोर पड़ता दिखा वैसे ही पंचायत से लेकर ब्लॉक और ऊपर के अधिकारी-कर्मचारी अपनी आदत से मजबूर होकर फिर से जनता की छाती पर मूँग दलने लगे हैं।

देहाती मजदूर यूनियन के संयोजक डॉ. दूधनाथ ने कहा कि देश के एक पूर्व प्रधानमंत्री ने 24 साल पहले स्वीकार किया था कि तमाम सरकारी योजनाओं के एक रुपये में से सिर्फ 15 पैसे नीचे तक पहुँचता है, बीच के दलाल 85 पैसे खा जाते हैं। आज तो मुश्किल से 5 पैसा नीचे तक पहुँचता है और उसमें से ग़रीबों को महज़ जूठन ही मिलती है। उनका हिस्सा भी गाँव और ब्लॉक के स्तर की नेताशाही और बाबू-अफसर मिलकर खा जाते हैं।

गाँव के गरीबों से जुड़ी हुई इन मांगों को लेकर शीघ्र ही आन्दोलन छेड़ा जाएगा ताकि लोग अपने अधिकारों को लेकर सचेत हों और बहरा हो चुका प्रशासन हरकत में आये।

27 फ़रवरी –1931

चन्द्रशेखर आज़ाद

का शहादत दिवस

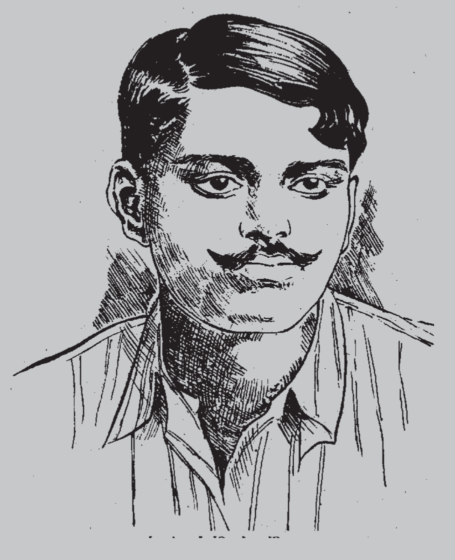

शहादत थी हमारी इसलिए

कि आज़ादियों का बढ़ता हुआ सफ़ीना

रुके न एक पल को

मगर ये क्या?

ये अँधेरा, से कारवाँ रुका क्यों है

चले चलो कि अभी काफ़िला-ए-इन्क़लाब को

आगे, बहुत आगे जाना है

आपस की बात

मज़दूरों की क़ब्रगाह बनता दिल्ली-सोनीपत हाइवे

राष्ट्रमण्डल खेलों को ध्यान में रखते हुए जब दिल्ली को पेरिस बनाने के चक्कर में केन्द्रीय दिल्ली के चप्पे-चप्पे को चमकाया जा रहा है। जगह-जगह पर सड़क पार करने के लिए सबवे तथा पुलों का निर्माण किया जा रहा है। टी.वी. तथा रेडियो पर जमकर प्रचार किया जा रहा है कि सब लोग सबवे तथा पुल का इस्तेमाल करें या सुरक्षित चलें, सुरक्षित चलायें वग़ैरह वग़ैरह। तो साफ़ पता चलता है कि यहाँ रह रहे खाये-पिये-अघाये पैसों वालों के लिए सरकार कितनी चिन्तित है?

परन्तु वही दिल्ली से सोनीपत की तरफ़ गुज़रने वाले हाइवे पर जहाँ हर दिन कोई न कोई मज़दूर धन-पशुओं की तेज़ रफ़्तार से आती कारों या बस और सामानों से भरे ट्रकों के नीचे रौंदा जाता है तो इसकी तरफ़ किसी का ध्यान नहीं जाता है।

ज्ञात हो कि सोनीपत की तरफ़ जाते समय मज़दूरों का आवास हाइवे के बायीं ओर पड़ता है। जहाँ भारी संख्या में बाहरी मज़दूर किराये पर रहते हैं। फ़ैक्ट्री का मुख्य इलाक़ा सड़क के दायीं ओर है। सड़क के इस पार से 5000-7000 मज़दूर प्रतिदिन हाइवे पार करके दिल्ली तथा दिल्ली बॉर्डर से मज़दूर सोनीपत में स्थित कुण्डली के इलाक़े में काम करने जाते हैं। हाइवे को पार करने के लिए सड़क के नीचे से न तो कोई सबवे है न ही ऊपर से कोई पुल। रेड लाइट भी बहुत कम है।

सुबह के समय जब मज़दूरों को काम पर पहुँचने की जल्दी होती है क्योंकि फ़ैक्ट्री में 5 मिनट भी लेट पहुँचने पर आधा दिन की दिहाड़ी काट ली जाती है। तो उन्हें तेज़ रफ़्तार से गुज़रने वाले गाड़ियों के रेले को गुज़रने का इन्तज़ार करना पड़ता है। ज्यों ही सड़क थोड़ी ख़ाली दिखती है वैसे ही मज़दूर लपककर सड़क पार करने लगते हैं। फिर उन्हें पतले से डिवाइडर पर खड़े होकर उस पार गाड़ियों के रेले को गुज़र जाने का इन्तज़ार करना पड़ता है। समय पर पहुँचने की जल्दी में आये दिन मज़दूर तेज़ रफ़्तार से आती गाड़ियों के नीचे कुचले जाते हैं। बुज़ुर्ग मज़दूर महिलाएँ इस तरह की दुर्घटनाओं का अधिक शिकार होती हैं।

प्रवासी मज़दूर होने के चलते, इनके दुर्घटनाग्रस्त होने पर कई बार ऐसा भी होता है कि स्थानीय लोगों द्वारा जान-पहचान न होने के कारण पुलिस वाले इधर-उधर फ़र्ज़ी कार्रवाई करके लाश को लावारिस तक घोषित कर देते हैं और हाइवे पर चलने वाली गाड़ियों को हरी झण्डी दिखा देते हैं ताकि बड़ी-बड़ी गाड़ियों में सवार धन-पशुओं को देर न हो जाये।

इस तरह, सहज ही समझा जा सकता है कि "विकास" के दावे की पीछे की सच्चाई क्या है? और सड़क, पुल, सबवे, तथा हर तरह के सामान बनाने वाले मज़दूरों के हिस्से में क्या आया है?

–जीतू
शिवपुरी कालोनी, सोनीपत

इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है।
– भगतसिंह

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर दिल्ली-94 फोन : 011-65976788

ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

सफ़ाई कर्मचारियों की रात की ड्यूटी अनिवार्य करने का अदालती फ़ैसला

सफ़ाई कर्मचारियों की सेहत और सुरक्षा का धयान कौन रखेगा, जज महोदय?

खुद गन्दी, बदबूदार, सीलनभरी जगहों पर रहते हुए शहर को चमकाने वाले सफाई कर्मचारियों के बदतर हालात में एक और इजाफा होने जा रहा है। दिल्ली हाईकोर्ट ने रात में सफाई व्यवस्था न करवा पाने के लिए नगर निगम को कड़ी फटकार लगायी है और इसे जल्द से जल्द लागू करने का आदेश दे दिया है। हालांकि अभी इस कर्मचारी विरोधी व्यवस्था के दिल्ली में लागू होने की बात ही चल रही है लेकिन यहां लागू होते ही तमाम अन्य शहरों में इसके लागू होने की सम्भावना भी काफी बढ़ जायेगी। दिल्ली के नजदीक ग़ाज़ियाबाद में भी इस योजना को लागू करने की तैयारियां अलग से चल रही हैं।

इस फैसले ने एक बार फिर से इस सामाजिक व्यवस्था के उस चश्मे को सामने ला दिया है जो खाये-पिये लोगों की सेहत और सुविधाओं को एक नजर से देखता है और गरीब मेहनतकश जनता की सेहत और सुविधाओं को दूसरी नजर से देखता है।

दरअसल कुछ "स्वास्थ्य-सजग" नागरिकों ने दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण का तर्क देते हुए रात को सफाई करवाने की याचिका दायर की थी। हाईकोर्ट ने इस पर मुस्तैदी से सहमति की मुहर लगा दी। फिलहाल गेंद दिल्ली नगर निगम के पाले में है जो इसे लागू करने में "अपने कारणों से" से दाएं-बाएं कर रहा है। रात में सफाई व्यवस्था के पक्ष में तर्क दिया गया है कि सफाई के दौरान उड़ने वाली धूल से अस्थमा, एलर्जी या सांस की बीमारियां हो सकती हैं और इसका खराब असर सुबह टहलने वाले लोगों पर पड़ता है। इस बात को सही मानने पर सबसे पहले तो सफाई कर्मचारी के स्वास्थ्य की सुरक्षा की चिन्ता की जानी चाहिए। सफाई कर्मचारी तो बरसों से बिना किसी सांस संबंधी सुरक्षा उपकरण के सफाई कर रहे हैं और उनमें टीबी, अस्थमा आदि रोग भी बहुतायत में मिलते हैं। इन बीमारियों से कई सफाई कर्मचारी जाने-अनजाने असमय मौत के मुंह में समाते रहते हैं। उड़ने वाली धूल से सेहत को सबसे ज्यादा खतरा इन सफाई कर्मचारियों को होता है जबकि चिन्ता की जा रही है दिनभर ऑफिसों-दुकानों-फैक्ट्रियों में बैठे-बैठे तोंद बढ़ाने वाले और फिर सुबह उसे कम करने के लिए हाँफते-काँपते दौड़ने वाले बाबू-सेठ लोगों की सेहत की या उनकी जो शानदार ट्रैकसूट पहनकर सुबह जॉगिंग करते हैं। जिन्दगी भर धूल-गन्दगी के बीच जीने वाले और अपनी सेहत की कीमत पर शहर को साफ-सुथरा रखने वाले सफाई कर्मचारियों के स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता न तो नगर निगम को है और न माननीय न्यायपालिका को।

अदालत ने अपने फ़ैसले में यह नहीं बताया कि कर्मचारी अपनी ड्यूटी वाली जगहों पर पहुँचेंगे किस तरह? रात में सार्वजनिक परिवहन तो बिलकुल बंद रहता है। बिना किसी परिवहन सुविधा के रात में कर्मचारियों का काम की जगह पर पहुँचना असंभव है। एक और अहम सवाल रात में कर्मचारियों की सुरक्षा का है। खासतौर पर सफाई कर्मचारियों में बड़ी संख्या में काम करने वाली महिला कर्मचारियों की सुरक्षा की गारण्टी कौन देगा? रात में सफाई व्यवस्था लागू होने के लिए पर्याप्त रोशनी होना भी बेहद जरूरी है। अकसर दिन में भी कांच या नुकीली चीजों, कीड़ों-मकोड़ों से चोट लगती रहती है। रात में इसका खतरा बहुत बढ़ जाएगा। एक अहम सवाल यह है कि क्या नगर निगम नाईट शिफ्ट से जुड़े श्रम कानूनों के सारे प्रावधानों को लागू करेगा?

दरअसल लगता है कि नगर निगम की इन सारी सुविधाओं को देने की मंशा नहीं है। वह चुपचाप इंतजार कर रहा है, जब अंतिम आदेश जारी हो जाएंगे तो आनन-फानन में इसे कोर्ट का आदेश बताकर लागू कर दिया जाएगा। इस तरह कर्मचारियों की दी जाने वाली सुविधाओं का खर्चा भी बचेगा और कोर्ट के आदेश का पालन भी हो जाएगा।

इस मामले में कर्मचारी यूनियनें भी चुप्पी मारे बैठी हैं। अधिकारियों के साथ मिलीभगत करके चुप्पी मारने वाले सफ़ेद कपड़े पहनने वाले ये नेता तब तक कुछ नहीं करेंगे जब तक खुद कर्मचारी इसके विरोध के लिए अड़ न जायें। यदि कर्मचारियों की तरफ से विरोध होता है तो वे भी इसके विरोध में हल्ला मचाने लगेंगे और इस तरह अपनी नेतागिरी पक्की करेंगे। वैसे भी सफाईकर्मचारियों की तमाम समझौतापरस्त और दगाबाज यूनियनें अब मंत्रियों और अधिकारियों के तलवे चाटने वाले दलालों के अड्डे से ज्यादा कुछ हैसियत नहीं रखती हैं।

वैसे अगर स्वास्थ्य के नजरिये से देखा जाए तो इस योजना में कोई खामी नहीं है लेकिन एक ऐसे समाज में जहां गरीबों की जिन्दगी को जिन्दगी न समझा जाता हो और उनकी सेहत से खिलवाड़ करके एक तबका ऐशोआराम की जिन्दगी जी रहा हो, यह योजना मेहनतकश आबादी पर एक और हमला है। हालांकि इस सामाजिक व्यवस्था में न्याय-इंसाफ की उम्मीद करना बेमानी है लेकिन अगर स्वास्थ्य की रक्षा का तर्क दिया जाता है तो यह हर तबके के लोगों पर समान रूप से लागू होना चाहिए।

सफाई कर्मचारियों के खिलाफ ये नादिरशाही फरमान न पहला है न आखिरी। ठेकेदारी व्यवस्था लागू होने के बाद से पहले से ही जुल्म के शिकार ज्यादातर कर्मचारी आज बेहद बुरी हालत में काम करने को मजबूर हैं। जाहिर है हर चुप्पी एक नये जुल्म का रास्ता तैयार करेगी। अब सवाल यह है कि शहर की गन्दगी साफ करने वाले हाथ उन्हें गुलाम समझने वाले लोगों के खिलाफ उठना कब शुरू होंगे?

– कपिल स्वामी

बोलते आँकड़े चीखती सच्चाइयाँ

– अमेरिकी अर्थव्यस्था 2008 की चौथी तिमाही में 3.8 प्रतिशत सिकुड़ गयी। 1982 के बाद से यह इसका सबसे खराब प्रदर्शन है। ज्यादातर कम्पनियों के गोदाम अनबिके मालों से भरे हुए है और इसलिए 2009 की पहली तिमाही में उत्पादन में और अधिक कटौती, और अधिक छँटनी और अर्थव्यवस्था का और अधिक सिकुड़ना तय है।

– पिछले वर्ष की अन्तिम तिमाही में अमेरिकी निर्यात में 19.7 प्रतिशत और आयात में 15.7 प्रतिशत की गिरावट आ गयी।

– दुनिया की अन्य बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के भी सिकुड़ने की भविष्यवाणी की जा रही है। यूरोजोन की अर्थव्यवस्था 2 प्रतिशत, ब्रिटेन की 2.8 प्रतिशत और जापान की अर्थव्यवस्था 2.6 प्रतिशत सिकुड़ सकती है।

– कुछ अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि विश्व अर्थव्यवस्था -0.5 प्रतिशत की दर से ऋणात्मक वृद्धि का सामना कर सकती है। 1930 के दशक की महामन्दी के बाद से पहली बार ऐसा होगा।

– मंदी की शुरुआत से अब तक अमेरिका में 40 लाख नौकरियाँ जा चुकी हैं। सिर्फ पिछले तीन महीनों में 18 लाख लोगों की नौकरी चली गयी है। इसी दर से अगले दो साल में एक करोड़ 40 लाख रोजगार खत्म होने का अन्देशा ज़ाहिर किया जा रहा है।

– अमेरिका में इस समय एक करोड़ 16 लाख बेरोजगार और 78 लाख अर्द्धबेरोजगार हैं।

– जापान में बेरोजगारी में पिछले 41 वर्ष में सबसे तेज बढ़ोत्तरी हुई है। मार्च तक कम से कम 4 लाख अस्थायी मज़दूर निकाल दिये जायेंगे। इनमें से बहुत से तो बेघर हो जायेंगे क्योंकि वे फैक्ट्री की डॉरमिट्री में ही रहते थे।

– चीन के 13 करोड़ प्रवासी मजदूरों में से 2 करोड़ बेरोजगार हो चुके है।

– यूरोपीय संघ के 27 देशों में बेरोजगारी की दर 8.7 प्रतिशत हो चुकी है। फ्रांस में यह दर 10.6 प्रतिशत है जबकि स्पेन में बेरोजगारी की दर 14.4 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है।

– अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की हाल की रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष के अन्त तक दुनिया भर में 5 करोड़ से ज्यादा रोजगार छिन जायेंगे।

–भारत में पिछले चार माह में मंदी के कारण 5 लाख नौकरियां चली गयीं। अनुमान किया जा रहा है कि सिर्फ निर्यात क्षेत्र में अगले एक वर्ष में 1 करोड़ नौकरियां चली जायेंगी।

– घोषित आँकड़ों से कहीं अधिक संख्या नौकरी से निकाले गये अस्थायी और ठेके पर काम करने वाले कर्मचारियों की है क्योंकि इनके बारे में नियोक्ता सरकार को पूरी जानकारी नहीं देते। पिछले दो दशकों से अस्थायी कर्मचारियों की संख्या दुनिया भर में बढ़ी है। अमेरिका में कुल कर्मचारियों के एक तिहाई यानी लगभग सवा चार करोड़ कर्मचारी अस्थायी हैं।

– अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन का अनुमान है कि काम करते हुए भी बेहद गरीबी में जीने वाले लोगों की संख्या 1 अरब 40 करोड़ तक यानी दुनिया के कुल रोजगारशुदा लोगों के 45 प्रतिशत तक पहुँच सकती है। इस समय गरीबी रेखा से कुछ ऊपर रह रहे लोगों में से 20 प्रतिशत इस वर्ष बेहद गरीबी में धँस जायेंगे।

दिल्ली मेट्रो की चकाचौंध के पीछे की काली सच्चाई

(पेज 1 से आगे)

की रख-रखाव सुविधाएं मुहैया कराने वाली ये ठेका कंपनियाँ श्रम कानूनों को ताक पर रखते हुए सफाई कर्मियों को न्यूनतम वेतन भी नहीं दे रही हैं और प्राय: कोई साप्ताहिक अवकाश तक नहीं दिया जाता।

सरकार के न्यूनतम मजदूरी कानून के अनुसार प्रत्येक सफाईकर्मी को 186 रुपये प्रति दिन के हिसाब से वेतन मिलना चाहिए लेकिन मेट्रो में वेतन 96 से लेकर 110 रुपये प्रति दिन के हिसाब से दिया जाता है। न तो ईएसआई की सुविधा दी जाती है और न ही पीएफ काटा जाता है। श्रम कानूनों को कायदे से अमल में लाया जा रहा है यह सुनिश्चित करना प्रथम नियोक्ता का काम होता है और चूँकि यहाँ प्रथम नियोक्ता दिल्ली मेट्रो है इसलिए उसकी यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि सफाईकर्मियों को उनका हक दिलवाये। पर दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित और मेट्रो के प्रबंध निदेशक ई. श्रीधरन को इतनी फुर्सत कहाँ कि वे इस तरह की बेकार की बातों पर गौर करें। गौरतलब है कि गुड़गाँव स्थित एक ठेका कंपनी के जीएम ने खुद स्वीकार किया कि मेट्रो जिस रेट पर ठेका देती है उसमें यह सम्भव ही नहीं है कि ठेकेदार अपनी कमाई निकालने के बाद सफाईकर्मियों को न्यूनतम मजदूरी दे। मेट्रो प्रशासन इस बात को बखूबी जानता है, लेकिन कुछ नहीं करता।

मानसरोवर के एक सफाईकर्मी ने बताया कि नौकरी पर रखने के लिए ए टु जेड नामक ठेका कंपनी के एक मैनेजर ने उससे 500 रुपये बतौर सेवा शुल्क लिया था। यह आम चलन है। सफाईकर्मियों से प्राप्त जानकारी के अनुसार काम के दौरान जरा-जरा सी बात पर ठेका कंपनी के प्रबंधक उनके साथ गाली-गलौज करते हैं तथा काम से निकालने की धमकी देते हैं। सफाईकर्मी विभिन्न मेट्रो स्टेशन प्रबंधकों से अपने साथ हो रही ज्यादतियों की शिकायत करते रहे हैं लेकिन मेट्रो प्रशासन के कान पर जूँ नहीं रेंग रही। अभी हाल ही में जब झिलमिल, मानसरोवर पार्क एवं दिलशाद गार्डेन मेट्रो स्टेशनों के सफाईकर्मियों ने न्यूनतम मजदूरी और अपने दूसरे अधिकारों की मांग उठायी तो उन्हें काम से निकालने की धमकी दी गयी और एक सफाईकर्मी अजय स्वामी को काम से हटा भी दिया गया।

लेकिन मेट्रो प्रशासन सब कुछ जानते हुए भी अनजान बना हुआ है और सारा दोष ठेका कंपनियों के मत्थे मढ़कर साफ बच निकलना चाहता है।

मेट्रो प्रशासन अपने यहाँ कार्यरत मजदूरों के मामले में कितना संवेदनशील है इसे हाल के उस वाकये से समझा जा सकता है जिसमें एक सुरक्षा गार्ड का हाथ ट्रेन के दरवाज़े में फँस गया और वह लटकते हुए अगले स्टेशन तक चला गया। इस पूरे मामले में मेट्रा प्रशासन मामले की लीपापोती करने में लगा रहा और घटना की जिम्मेदारी खुद उस गार्ड तक पर डालने की कोशिश करता रहा। हर्जाना कम से कम देना पड़े इसके लिए मेट्रो प्रशासन ने डॉक्टरों पर दबाव तक डाला कि वे चोट को मामूली बतायें।

सफाई कर्मचारी ही नहींख मेट्रो के सभी कामगारों के हालात कमोबेश एक जैसे हैं, चाहे अपनी जान को जोखिम में डालकर कांस्ट्रक्शन में दिन-रात खटने वाले मजदूर हों या स्टेशनों पर काम करने वाले गार्ड व अन्य वर्कर किसी को भी उनके जायज हक और सुविधाएं नहीं मिल रही हैं। किसी को कभी भी बिना कारण बताये काम पर से हटा दिया जाता है। वह दिन दूर नहीं जब एक जैसे हालात में काम करने वाले मेट्रो के सभी कर्मचारी इस बात को समझेंगे और अपने हकों के लिए एकजुट होकर आवाज बुलंद करेंगे। अधिकार माँगने से नहीं मिलते वरन उनके लिए संघर्ष करना पड़ता है। मजदूर अपने रोजमर्रा के अनुभवों से अच्छी तरह जानते हैं कि अकेले अपने दम पर वे भ्रष्ट मेट्रो प्रशासन और लुटेरे ठेकेदारों से नहीं लड़ सकते, उन्हें एकजुट होकर संघर्ष करना ही होगा।

मज़दूर अख़बार — किस मज़दूर के लिए?

(क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कुछ समस्याएँ)

• लेनिन

सभी देशों में मज़दूर आन्दोलन का इतिहास यह दिखाता है कि मज़दूर वर्ग के उन्नततर संस्तर ही समाजवाद के विचारों को अपेक्षतया अधिक तेज़ी के साथ और अधिक आसानी के साथ अपनाते हैं। इन्हीं के बीच से, मुख्य तौर पर, वे अग्रवर्ती मज़दूर आते हैं, जिन्हें प्रत्येक मज़दूर आन्दोलन आगे लाता है, वे मज़दूर जो मेहनतकश जन-समुदाय का विश्वास जीत सकते हैं, जो ख़ुद को पूरी तरह सर्वहारा वर्ग की शिक्षा और संगठन के कार्य के लिए समर्पित करते हैं, जो सचेतन तौर पर समाजवाद को स्वीकार करते हैं और यहाँ तक कि, स्वतन्त्र रूप से समाजवादी सिद्धान्तों को निरूपित कर लेते हैं। हर सम्भावना- सम्पन्न मज़दूर आन्दोलन ऐसे मज़दूर नेताओं को सामने लाता रहा है, अपने प्रूधों और वाइयाँ, वाइटलिंग और बेबेल पैदा करता रहा है। और हमारा रूसी मज़दूर आन्दोलन भी इस मामले में यूरोपीय आन्दोलन से पीछे नहीं रहने वाला है। आज जबकि शिक्षित समाज ईमानदार, ग़ैरक़ानूनी साहित्य में दिलचस्पी खोता जा रहा है, मज़दूरों के बीच ज्ञान के लिए और समाजवाद के लिए एक उत्कट अभिलाषा पनप रही है, मज़दूरों के बीच से सच्चे वीर सामने आ रहे हैं, जो अपनी नारकीय जीवन-स्थितियों के बावजूद, जेलख़ाने की मशक़्क़त जैसे कारख़ाने के जड़ीभूत कर देने वाले श्रम के बावजूद, ऐसा चरित्र और इतनी इच्छाशक्ति रखते हैं कि लगातार अध्ययन, अध्ययन और अध्ययन के काम में जुटे रहते हैं और ख़ुद को सचेतन सामाजिक-जनवादी (कम्युनिस्ट) – "मज़दूर बौद्धिक" बना लेते हैं। रूस में ऐसे "मज़दूर बौद्धिक" अभी भी मौजूद हैं और हमें हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए कि इनकी क़तारें लगातार बढ़ती रहें, इनकी उन्नत मानसिक ज़रूरत पूरी होती रहे और कि, इनकी पाँतों से रूसी सामाजिक जनवादी मज़दूर पार्टी (रूसी कम्युनिस्ट पार्टी का तत्कालीन नाम) के नेता तैयार हों। जो अख़बार सभी रूसी सामाजिक जनवादियों (कम्युनिस्टों) का मुखपत्र बनना चाहता है, उसे इन अग्रणी मज़दूरों के स्तर का ही होना चाहिए, उसे न केवल कृत्रिम ढंग से अपने स्तर को नीचा नहीं करना चाहिए, बल्कि उल्टे उसे लगातार ऊँचा उठाना चाहिए, उसे विश्व सामाजिक-जनवाद (यानी विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन) के सभी रणकौशलात्मक, राजनीतिक और सैद्धान्तिक समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए। केवल तभी मज़दूर बौद्धिकों की माँगें पूरी होंगी, और वे रूसी मज़दूरों के और **परिणामत:** रूसी क्रान्ति के ध्येय को अपने हाथों में ले लेंगे।

संख्या में कम अग्रणी मज़दूरों के संस्तर के बाद औसत मज़दूरों का व्यापक संस्तर आता है। ये मज़दूर भी समाजवाद की उत्कट इच्छा रखते हैं, मज़दूर अध्ययन-मण्डलों में भाग लेते हैं, समाजवादी अख़बार और किताबें पढ़ते हैं, आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य में भाग लेते हैं और उपरोक्त संस्तर से सिर्फ़ इसी बात में अलग होते हैं कि ये सामाजिक जनवादी मज़दूर आन्दोलन के पूरी तरह स्वतन्त्र नेता नहीं बन सकते। जिस अख़बार को पार्टी का मुखपत्र होना है, उसके कुछ लेखों को औसत मज़दूर नहीं समझ पायेगा, जटिल सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समस्या को पूरी तरह समझ पाने में वह सक्षम नहीं होगा। लेकिन इसका यह मतलब क़तई नहीं निकलता कि अख़बार को अपना स्तर अपने व्यापक आम पाठक समुदाय के स्तर तक नीचे लाना चाहिए। इसके उलट, अख़बार को उनका स्तर ऊँचा उठाना चाहिए, और मज़दूरों के बीच के संस्तर से अग्रणी मज़दूरों को आगे लाने में मदद करनी चाहिए। **स्थानीय** व्यावहारिक कामों में डूबे हुए और मुख्यत: मज़दूर आन्दोलन की घटनाओं में तथा आन्दोलनात्मक प्रचार की फ़ौरी समस्याओं में दिलचस्पी लेने वाले ऐसे मज़दूरों को अपने हर क़दम के साथ पूरे रूसी मज़दूर आन्दोलन का, इसके ऐतिहासिक कार्यभार का और समाजवाद के अन्तिम लक्ष्य का विचार जोड़ना चाहिए। अत: उस अख़बार को, जिसके अधिकांश पाठक औसत मज़दूर ही हैं, हर स्थानीय और संकीर्ण प्रश्न के साथ समाजवाद और राजनीतिक संघर्ष को जोड़ना चाहिए।

और अन्त में, औसत मज़दूरों के संस्तर के बाद वह व्यापक जनसमूह आता है जो सर्वहारा वर्ग का अपेक्षतया निचला संस्तर होता है। बहुत मुमकिन है कि एक समाजवादी अख़बार पूरी तरह या तक़रीबन पूरी तरह उनकी समझ से परे हो (आख़िरकार पश्चिमी यूरोप में भी तो सामाजिक जनवादी मतदाताओं की संख्या सामाजिक जनवादी अख़बारों के पाठकों की संख्या से कहीं काफ़ी ज़्यादा है), लेकिन इससे यह नतीजा निकालना बेतुका होगा कि सामाजिक जनवादियों के अख़बार को, अपने को मज़दूरों के निम्नतम सम्भव स्तर के अनुरूप ढाल लेना चाहिए। इससे सिर्फ़ यह नतीजा निकलता है कि ऐसे संस्तरों पर राजनीतिक प्रचार और आन्दोलनपरक प्रचार के दूसरे साधनों से प्रभाव डालना चाहिए – अधिक लोकप्रिय भाषा में लिखी गयी पुस्तिकाओं, मौखिक प्रचार तथा मुख्यत: स्थानीय घटनाओं पर तैयार किये गये परचों के द्वारा। सामाजिक जनवादियों को यहीं तक सीमित नहीं रखना चाहिए, बहुत सम्भव है कि मज़दूरों के निम्नतर संस्तरों की चेतना जगाने के पहले क़दम क़ानूनी शैक्षिक गतिविधियों के रूप में अंजाम दिये जायें। पार्टी के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह इन गतिविधियों को इस्तेमाल करे इन्हें उस दिशा में लक्षित करे जहाँ इनकी सबसे अधिक ज़रूरत है; क़ानूनी कार्यकर्ताओं को उस अनछूई ज़मीन को जोतने के लिए भेजे, जिस पर बाद में सामाजिक जनवादी प्रचारक संगठनकर्ता बीज बोने का काम करने वाले हों। बेशक मज़दूरों के निम्नतर संस्तरों के बीच प्रचार-कार्य में प्रचारकों को अपनी निजी विशिष्टताओं, स्थान, पेशा (मज़दूरों के काम की प्रकृति) आदि की विशिष्टताओं का उपयोग करने की सर्वाधिक व्यापक सम्भावनाएँ मिलनी चाहिए। बर्नस्टीन के ख़िलाफ़ अपनी पुस्तक में काउत्स्की लिखते हैं, "रणकौशल और आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य को आपस में गड्ड-मड्ड नहीं किया जाना चाहिए। आन्दोलनात्मक प्रचार का तरीक़ा व्यक्तिगत और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य में हर प्रचारक को वे तरीक़े अपनाने की छूट होनी चाहिए, जो वह अपने लिए ठीक समझे : कोई प्रचारक अपने जोशो-खरोश से सबसे अधिक प्रभावित करता है, तो कोई दूसरा अपने तीखे कटाक्षों से, जबकि तीसरा ढेरों मिसालें देकर, वग़ैरह-वग़ैरह। प्रचारक के अनुरूप होने के साथ ही, आन्दोलनात्मक प्रचार जनता के भी अनुरूप होना चाहिए। प्रचारक को ऐसे बोलना चाहिए कि सुनने वाले उसकी बातें समझें; उसे शुरुआत ऐसी किसी चीज़ से करनी चाहिए, जिससे श्रोतागण बख़ूबी वाक़िफ़ हों। यह सब कुछ स्वत:स्पष्ट है और यह सिर्फ़ किसानों के बीच आन्दोलनात्मक प्रचार पर ही लागू नहीं होता। गाड़ी चलाने वालों से उस तरह बात नहीं होती, जिस तरह जहाज़ियों से और जहाज़ियों से वैसे बात नहीं होती जैसे छापाख़ाने के मज़दूरों से। **आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य व्यक्तियों के हिसाब से** होना चाहिए, लेकिन हमारा रणकौशल-हमारी राजनीतिक **गतिविधियाँ एक-सी ही** होनी चाहिए" (पृ. 2-3)। सामाजिक जनवादी सिद्धान्त के एक अगुवा प्रतिनिधि के इन शब्दों में पार्टी की आम गतिविधि के एक अंग के तौर पर आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य का एक बेहतरीन आकलन निहित है। ये शब्द साफ़ कर देते हैं कि उन लोगों के सन्देह कितने निराधार हैं, जो यह सोचते हैं कि राजनीतिक संघर्ष चलाने वाली क्रान्तिकारी पार्टी का गठन आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य में बाधक होगा, उसे पृष्ठभूमि में डाल देगा और प्रचारकों की स्वतन्त्रता को सीमित कर देगा। इसके विपरीत, केवल एक संगठित पार्टी ही व्यापक आन्दोलनात्मक प्रचार का कार्य चला सकती है, सभी आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर प्रचारकों को आवश्यक मार्गदर्शन (और सामग्री) दे सकती है, आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य की हर स्थानीय सफलता का उपयोग पूरे रूस के मज़दूरों की शिक्षा के लिए कर सकती है, प्रचारकों को ऐसे स्थानों पर या ऐसे लोगों के बीच भेज सकती है, जहाँ वे सबसे ज़्यादा कामयाब ढंग से काम कर सकते हों। केवल एक संगठित पार्टी में ही आन्दोलनात्मक प्रचार की योग्यता रखने वाले लोग अपने को पूरी तरह इस काम के लिए समर्पित करने की स्थिति में होंगे, जो आन्दोलनात्मक प्रचार-कार्य के लिए फ़ायदेमन्द तो होगा ही, सामाजिक जनवादी कार्य के दूसरे पहलुओं के लिए भी हितकारी होगा। इससे पता चलता है कि जो व्यक्ति आर्थिक संघर्ष के पीछे राजनीतिक प्रचार और राजनीतिक आन्दोलनात्मक प्रचार को भुला देता है, जो मज़दूर आन्दोलन को एक राजनीतिक पार्टी के संघर्ष में संगठित करने की आवश्यकता को भुला देता है, वह और सब बातों के अलावा, सर्वहारा के निम्नतर संस्तरों को मज़दूर वर्ग के लक्ष्य की ओर तेज़ी से और सफलतापूर्वक आकर्षित करने के अवसर से ख़ुद को वंचित कर लेता है।

(1899 के अन्त में लिखित लेनिन के लेख 'रूसी सामाजिक जनवाद में एक प्रतिगामी प्रवृत्ति' का एक अंश। संग्रहीत रचनाएँ, अंग्रेज़ी संस्करण, खण्ड 4, पृ. 280-283)।

• अनुवाद : आलोक रंजन

गाज़ा में इज़रायल की हार

गाजा में टनों गोला-बारूद, मिसाइलें और टैंकों की अपनी पूरी ताकत खर्च कर चुकने के बावजूद इजरायल अपने मकसद में नाकामयाब रहा। उसने जिस मकसद से हमले किये थे वह तो कत्तई हासिल हुआ नहीं उल्टे दुनिया-भर में थू-थू करवाने के बाद मुँह पिटा कर वापस लौटने पर मजबूर होना पड़ा। अन्तरराष्ट्रीय विश्लेषकों का मानना है कि इन हमलों से इजरायल राजनीतिक, कूटनीतिक और सैन्य तरीके से नुकसान ही हुआ है। एक जर्मन दैनिक "स्युड़यूश" ने शीर्षक दिया – 'ओल्मर्ट की कथित जीत, हार है।'

इन हमलों की तैयारी तो तभी शुरू हो गयी थी जब पिछले साल नवंबर 2008 में इजरायल ने गाजा पट्टी की जल, थल और वायु में नाकेबंदी करके इस इलाके को एक विशाल 'घेट्टो' में तब्दील करने के शर्मनाक कदम उठाने शुरू कर दिये थे। गाजा पट्टी के लोगों के हमास को समर्थन करने से भी इजरायल खुन्नस खाये हुए था। अपने माईबाप अमेरिका के इशारे पर नाकेबंदी करके उसका सोचना था कि वह फिलीस्तीनी लोगों के प्रतिरोध को घुटने टेकने पर मजबूर कर देगा। इन कठिन परिस्थितियों ने भी फिलीस्तीनी लोगों के जज्बे में कोई कमी नहीं आने दी। बल्कि वे और ज्यादा बहादुरी के साथ इजरायली दमन का मुकाबला करने लगे। इससे इजरायल की खीझ और झुंझलाहट बढ़ गयी और उसने हमले शुरू कर दिये।

इन हमलों में जिस तरह निर्दोष नागरिकों, बूढ़ों, महिलाओं, बच्चों, चिकित्साकर्मियों, राहतकर्मियों से लेकर अस्पतालों और स्कूलों तक को निशाना बनाया गया, उसने पूरी दुनिया में इजरायल के खिलाफ नफरत की लहर पैदा कर दी। इन हमलों के खिलाफ यूरोप समेत पूरी दुनिया में बड़े-बड़े प्रदर्शन हुए। खासतौर पर अरब देशों की जनता में गुस्सा उबल पड़ा। इन देशों की जनता के व्यापक पैमाने पर सड़कों पर उतरने की वजह से कई अमेरिकापरस्त शासकों को भी इजरायल विरोधी रुख अख्तियार करने पर मजबूर कर दिया।

इजरायल को हराने वाली असली ताकत वहाँ की जनता की वह भावना है जिसने साम्राज्यवादी लठैत के आगे झुकने से इंकार कर दिया है। वैसे भी फिलीस्तीनी कौम का लड़ते रहने का शानदार इतिहास रहा है। इस जुझारू कौम ने अपनी जगह-जमीन से बेदखल होने के बाद स्वतंत्र फिलीस्तीन की माँग अकूत कुर्बानियाँ देकर उठाते रहे हैं। इतिहास भी बताता है कि बड़ी से बड़ी ताकत भी जनता की आबाज को दबा नहीं पाती। दशकों से भुखमरी और बुनियादी सुविधाओं के बगैर जी रहे फिलीस्तीनियों का प्रतिरोध अमेरिका और मध्यपूर्व में तैनात उसके पाँव-दबाऊ लठैत इजरायल के लिए एक चुनौती है। ताजा हमलों में भी लगभग 1300 जानें गँवाने, 5500 लोगों के घायल होने और हजारों मकानों के ध्वस्त किये जाने के बावजूद फिलीस्तीनी लोगों का संघर्ष रूकने का कोई संकेत नहीं है। बल्कि इन हमलों ने उनके दिलों में इजरायल और अमेरिका के खिलाफ गुस्से को और गहरा और तीखा कर दिया है जो निश्चित तौर पर आने वाले दिनों में आतताइयों की कब्र खोदने के काम आयेगा।

हमास को खत्म करने का इजरायल का इरादा भी दूर की कौड़ी ही साबित हुआ। दरअसल हमास जनता में इतना घुलमिल गया है कि उसे अलग से टारगेट करना संभव ही नहीं है। हमास के जनता में व्यापक जनाधार होने के भी निश्चित कारण हैं। फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन (पीएलओ) के समझौतापरस्त हो जाने के बाद इजरायली फौजों का बहादुरी से मुकाबला करने वाला एकमात्र संगठन कट्टरपंथी हमास था। कोई क्रान्तिकारी विकल्प न होने की वजह से लड़ रहे हमास के साथ जनता को खड़ा होना ही था। बेशक जनता पूरी तरह से हमास के कट्टरपंथी एजेंडे से सहमत न भी हो लेकिन फिलहाल की परिस्थितियों में तो हमास ही जनता के प्रतिरोध के एकमात्र प्रतीक के तौर पर उभर चुका है। अभी भी हमास का व्यापक आधार मौजूद है लेकिन उम्मीद की जानी चाहिए कि वह फिलीस्तीनी जनता के अन्तरविरोधों को दूर करके उन्हें एक करने में कामयाब रहेगा। वैसे खुद इजरायली प्रधानमंत्री ने आखिरकार माना कि हमास को खत्म करना फिलहाल संभव नहीं है।

इन हमलों ने रणनीतिक तौर पर फिलीस्तीनी संघर्ष को ताकत दी है। इन हमलों ने एक तरफ तो गाजा पट्टी के बदतर हालातों की तरफ सारे विश्व का ध्यान खींचा है वहीं फिलीस्तीनी संघर्ष से सहानुभूति रखने वाले दुनिया भर में कई लोग पैदा कर दिये हैं। इन हमलों ने साम्राज्यवाद के खिलाफ अरब जनता के अंदर ही अंदर सुलग रहे गुस्से को बाहर निकालने का रास्ता दिखा दिया है। भविष्य में अरब जनता के साम्राज्यवाद के खिलाफ कमर कस लेने से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इन हमलों ने मध्य-पूर्व के अमेरिका परस्त और अमेरिका विरोधी देशों के बीच खाई को और चौड़ा कर दिया है। साथ ही अमेरिका के मानवाधिकारों और लोकतंत्र आदि के दावों की पोल एक बार फिर खोल कर रख दी है। इन हमलों ने इजरायली जियनवादियों और अमेरिकी शासक वर्ग के बर्बर, अमानुषिक और हिंसक चेहरे को सामने ला दिया है।

जाहिर है कि इन हमलों में मारे गये फिलीस्तीनी लोगों का खून बेकार नहीं गया है। इन हमलों के बाद फिलीस्तीनी जनता का प्रतिरोधा ज्यादा बढ़ेगा, उनका संघर्ष ऊंचा उठेगा। इजरायल इन हमलों के बाद नैतिक रूप से पराजित हो गया है। हो सकता है कि गाजा से उठने वाले प्रतिरोध की लहरें समूचे मध्यपूर्व फैल जाएं और साम्राज्यवादियों के पाँव उखाड़ने की शुरुआत कर दें।

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ

• आलोक रंजन

दिसम्बर, 2008 और जनवरी, 2009 के महीने नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन और पूरे नेपाल के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहे। **नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी)** और **नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एकता केन्द्र–मसाल)** के बीच लम्बे समय से जारी एकता–प्रक्रिया का, विगत 13 जनवरी 2009 को एक जनसभा में एकता की सार्वजनिक घोषणा के बाद, सफल समापन हो गया। नयी पार्टी का नाम **एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी)** रखा गया है।

ने.क.पा. (माओवादी) और ने.क.पा. (एकता केन्द्र–मसाल) के बीच मतभेद के मुद्दों, राजनीतिक वाद–विवाद और क़दम–ब–क़दम एकता की ओर अग्रवर्ती विकास की प्रक्रिया की चर्चा, **'बिगुल'** के मई और जून 2008 के अंकों में धारावाहिक प्रकाशित लम्बे निबन्ध में हम कर चुके हैं। नेपाली कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के इन दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटकों की एकता नेपाल में जारी नवजनवादी क्रान्ति की प्रगति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस महत्त्वपूर्ण घटना के बाद क्रान्तिकारी शिविर में एकता–प्रक्रिया की गति और तेज़ हो गयी है। जल्दी ही कुछ और संगठन एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) में शामिल हो जायेंगे। इसकी चर्चा हम लेख में आगे यथास्थान करेंगे।

नेपाल में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की एकता ने क़तारों और आम मेहनतकश जनता के भीतर नये उत्साह और नयी आशाओं का संचार किया है। लेकिन जन समुदाय की नयी क्रान्तिकारी आकांक्षाओं–अपेक्षाओं की कसौटी पर नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी किस हद तक खरे उतरेंगे, इस प्रश्न का उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में है। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि एकता के पहले ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर सामाजिक जनवादी भटकाव और "नववामपन्थी मुक्त चिन्तन" की जो रुझानें मौजूद रही हैं (इनकी चर्चा 'बिगुल' के मई–जून 2008 के अंकों में प्रकाशित लेख में की जा चुकी है), उनसे छुटकारा पाने में एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) किस हद तक सफल होती है! सकारात्मक बात यह है कि न केवल ने.क.पा. (एकता केन्द्र–मसाल) ज़्यादातर सही अवस्थिति अपनाकर दक्षिणपन्थी अवसरवादी विचलनों का विरोध करती रही है, बल्कि 2008 के अन्तिम तीन–चार महीनों के दौरान ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर भी सामाजिक जनवादी भटकाव की लाइन के विरुद्ध तीखा संघर्ष चलता रहा है। इस संघर्ष में दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन को काफ़ी हद तक पीछे हटना पड़ा है, हालाँकि यह लाइन अभी भी पार्टी के भीतर मौजूद है। दो लाइनों के इस संघर्ष की चर्चा भी आगे की जायेगी।

संविधान सभा चुनाव के बाद का राजनीतिक घटनाक्रम : एक संक्षिप्त सिंहावलोकन

10 अप्रैल को सम्पन्न हुए संविधान सभा चुनाव में नेपाली कांग्रेस की भारी पराजय और ने.क.पा. (माओवादी) के सबसे अधिक सीटें हासिल करने के बावजूद गिरिजा प्रसाद कोइराला सत्ता से चिपके रहे। माओवादियों को सत्ता में आने से रोकने के लिए नेपाली कांग्रेस ने ने.क.पा. (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फ़ोरम सहित सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों को साथ लेने की हर चन्द कोशिशें कीं, लेकिन भारी जनादेश के दबाव और इन सभी बुर्जुआ दलों के आपसी अन्तरविरोध के कारण इनका कोई टिकाऊ संयुक्त मोर्चा अस्तित्व में नहीं आ सका। इस दौरान नेपाली कांग्रेस सत्ता से हटने के लिए लगातार तरह–तरह की शर्तें रखती रही। उसने पहले अन्तरिम संविधान में संशोधन की शर्त रखी, फिर बारह सूत्री शान्ति समझौते से मुकरते हुए जनमुक्ति सेना को भंग करने और हथियार राज्य को सौंपने या नष्ट करने, यंग कम्युनिस्ट लीग को भंग करने तथा जनयुद्ध के दौरान भूस्वामियों से ज़ब्त सम्पत्ति उन्हें लौटाने की माँग रखी। ने.क.पा. (माओवादी) ने इन नयी शर्तों का पुरज़ोर विरोध करते हुए इन्हें 12 सूत्री शान्ति समझौते के साथ विश्वासघात बताया और फिर से देशव्यापी जनान्दोलन की धमकी दी। 28 मई 2008 को संविधान सभा की पहली बैठक में राजतन्त्र की समाप्ति और संघात्मक जनवादी गणराज्य की घोषणा के बाद भी गतिरोध बना रहा। लेकिन पूरे देश में हवा का रुख़ देखते हुए प्रधानमन्त्री गिरिजा प्रसाद कोइराला को जून 2008 के अन्त में अन्ततोगत्वा अपने इस्तीफ़े की घोषणा करनी पड़ी। लेकिन इसके पहले ने.क.पा. (एमाले) और अन्य बुर्जुआ पार्टियों के सहयोग से नेपाली कांग्रेस दो तिहाई बहुमत से प्रधानमन्त्री को हटाये जाने के प्रावधान को अन्तरिम संविधान से हटाने में सफल रही। यानी अब प्रधानमन्त्री को सामान्य बहुमत से भी हटाया जा सकता था। माओवादियों को राष्ट्रपति प्रणाली (यानी राष्ट्रपति को प्रधान कार्यकारी पद बनाने) के अपने प्रस्ताव से भी पीछे हटना पड़ा। राष्ट्रपति पद को, भारत की तरह, 'सेरेमोनियल' बनाने और प्रधानमन्त्री पद को मुख्य कार्यकारी पद बनाने की अन्तरिम संवैधानिक व्यवस्था उन्हें स्वीकार करनी पड़ी।

जुलाई, 2008 में राष्ट्रपति पद के लिए ने.क.पा. (माओवादी) ने तराई के प्रसिद्ध राजतन्त्र–विरोधी गणतन्त्रवादी रामराजा प्रसाद सिंह को अपना उम्मीदवार बनाया। उनके विरुद्ध नेपाली कांग्रेस के उम्मीदवार डॉ. रामबरन यादव थे। ने.क.पा. (एमाले) माओवादियों के साथ सौदेबाज़ी करके माधव कुमार नेपाल को साझा उम्मीदवार बनाना चाहती थी। इसमें सफलता नहीं मिलने पर उसने ने.कां. के उम्मीदवार का समर्थन किया और बदले में संविधान सभा के अध्यक्ष की कुर्सी हासिल की। इसी तरह की सौदेबाज़ी करके मधेसी जनाधिकार फ़ोरम ने उपराष्ट्रपति पद के अपने उम्मीदवार परमानन्द झा के लिए उपरोक्त दोनों पार्टियों का समर्थन हासिल किया। राष्ट्रपति पद के लिए रामबरन यादव और उपराष्ट्रपति पद के लिए परमानन्द झा विजयी हुए। इस पराजय के बाद ने.क.पा. (माओवादी) ने सरकार बनाने के बजाय विपक्ष में बैठने का निर्णय लिया। इससे एमाले और म.ज.फो. पर दबाव बढ़ गया। उन्हें फिर से जनयुद्ध का भूत सताने लगा। उनके ख़िलाफ़ जो भारी जनाक्रोश था, उसका नतीजा आगामी चुनावों में सामने आने का भी भय था। तीन महत्त्वपूर्ण पदों पर माओवादी उम्मीदवारों की पराजय के साथ ही उनका तात्कालिक उद्देश्य भी पूरा हो चुका था और सत्ता की बन्दरबाँट को लेकर नेपाली कांग्रेस के साथ उनके अन्तरविरोध उभरने लगे थे। दरअसल इन दोनों दलों का उद्देश्य नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (माओवादी) के साथ सौदेबाज़ी करके अपना उल्लू सीधा करना था और इसमें वे एक हद तक सफल भी हो चुके थे। अगस्त में ने.क.पा. (माओवादी) के साथ सरकार बनाने के लिए ने.क.पा. (एमाले) और मधेसी जनाधिकार फ़ोरम तैयार हो गये। ने.क.पा. (एकता केन्द्र–मसाल) का क़ानूनी मोर्चा – जनमोर्चा, नेपाल पहले से ही साथ था। सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाला ने.क.पा. (मा–ले), ने.क.पा. (संयुक्त) और सद्भावना पार्टी (राजेन्द्र महतो) भी सरकार में शामिल होने को तैयार हो गये। संविधान सभा के चुनावों के ठीक चार माह बाद, कुल 25 में से 21 पार्टियों के समर्थन से, 80 प्रतिशत मत हासिल करके माओवादी पार्टी के चेयरमैन पुष्प कमल दहल 'प्रचण्ड' संघात्मक जनवादी गणराज्य नेपाल के पहले प्रधानमन्त्री बने।

नेपाल में समाज–विकास की दिशा और संक्रमण–अवधि की चुनौतियाँ : क्रान्तिकारी रणनीतिक लक्ष्य के लिए सही रणकौशल का सवाल

निश्चय ही, राजतन्त्र की समाप्ति और संघात्मक जनवादी गणराज्य की घोषणा के साथ माओवादियों के नेतृत्व में नयी अन्तरिम सरकार का गठन नेपाल में जारी जनवादी क्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण अगला मुक़ाम है। यह उपलब्धि महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इसे गुणात्मक रूप से भिन्न, क्रान्ति की अगली मंज़िल या अवस्था घोषित करना भ्रामक होगा और बेहद नुक़सानदेह भी।

राजशाही के ख़ात्मे के बावजूद राज्यतन्त्र के ढाँचे और वर्गचरित्र में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है। क्रान्तिकारी भूमि सुधार का काम अभी भी पूरा नहीं हुआ है। भूस्वामी वर्ग के हितों की नुमाइन्दगी इस समय नेपाली कांग्रेस और अन्य बुर्जुआ दल कर रहे हैं। साथ ही, आज की विश्व परिस्थितियों और नेपाल की ठोस परिस्थितियों में नेपाली पूँजीपति वर्ग को भी दलाल और राष्ट्रीय के परस्पर–विरोधी प्रवर्गों में नहीं बाँटा जा सकता (जैसा कि नेपाल के सभी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी दल कर रहे हैं)। नेपाल का बड़ा पूँजीपति वर्ग और बड़ा व्यापारी वर्ग अपने चरित्र से अत्यधिक प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवाद–परस्त है, जबकि छोटा पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद से सीमित आज़ादी की आकांक्षा रखता है और देश में पूँजीवादी विकास का भी पक्षधर है। लेकिन राजशाही की समाप्ति और सबसे बड़ी ताक़त के रूप में माओवादियों के सामने आने के बाद, यह वर्ग भी सर्वहारा क्रान्ति से अत्यधिक भयभीत होकर प्रतिक्रान्ति के पाले में जा खड़ा हुआ है। ने.क.पा. (एमाले) जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ और क्षेत्रीय बुर्जुआ पार्टियाँ मध्य वर्ग के साथ ही इन छोटे पूँजीपतियों की भी नुमाइन्दगी कर रही हैं जो कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के ख़िलाफ़ निर्णायक लामबन्दी में, आपसी अन्तरविरोधों के बावजूद, बड़े पूँजीपतियों और भूस्वामियों की नुमाइन्दगी करने वाली नेपाली कांग्रेस, सद्भावना पार्टी आदि के साथ खड़ी होंगी। जहाँ तक भूस्वामियों का प्रश्न है, नेपाली कांग्रेस और तराई की मधेस पार्टियाँ पुराने भूस्वामियों के साथ ही उन नये बुर्जुआ भूस्वामियों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं जो सीमित स्तर पर पूँजीवादी भूमि सम्बन्धों के विकास के साथ नेपाल में पैदा हो चुके हैं। इस सन्दर्भ में इन पार्टियों का (सीमित हद तक बिस्मार्क, या ज़ारशाही और उसके मन्त्री स्तॉलिपिन जैसा) दोहरा चरित्र है। यदि सर्वहारा शक्तियों की पराजय की स्थिति में नेपाल में बुर्जुआ जनवादी गणराज्य की स्थिति भी क़ायम होगी, तो वहाँ के भूमि सम्बन्धों में ऊपर से, क्रमिक रूपान्तरण के ज़रिये, ("प्रशियाई मार्ग" से) परिवर्तन होना लाज़िमी होगा। नेपाल में सामन्ती भूस्वामियों के हितों को नुक़सान पहुँचाये बग़ैर उन्हें ही पूँजीवादी भूस्वामी बना देने, एक राष्ट्रीय बाज़ार का विकास करने, और इसके लिए साम्राज्यवाद की मातहती स्वीकार करते हुए भी अन्तर–साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाने की नेपाल का बड़ा पूँजीपति वर्ग कोशिश करेगा और छोटे पूँजीपति वर्ग की, आपसी अन्तरविरोधों के बावजूद, इस आम नीति एवं रणनीति पर उसके साथ सहमति होगी। यानी, नेपाली कांग्रेस से लेकर ने.क.पा. (एमाले), ने.क.पा. (मा.ले.) जैसी संशोधनवादी पार्टियों तथा क्षेत्रीय और छोटी बुर्जुआ पार्टियों तक की, पूँजीवादी रास्ते के प्रश्न पर कमोबेश आम सहमति होगी और उनकी हर चन्द कोशिश होगी कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी भी या तो पतित होकर पूँजीवादी संसदीय जनवाद के इस खेल में शामिल हो जायें, या फिर, संक्रमण अवधि का इस्तेमाल अपनी तैयारी के लिए तथा तरह–तरह से कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का आधार कमज़ोर करने के लिए किया जाये और फिर प्रतिक्रान्ति के द्वारा क्रान्ति को निर्णायक रूप से कुचल दिया जाये।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए भी इस संक्रमण–अवधि का एकमात्र सही इस्तेमाल यही हो सकता है कि वे निर्णायक संघर्ष की अगली मंज़िल के लिए तैयारी करें, जनयुद्ध के दौरान हासिल ताक़त को हरचन्द कोशिश करके बचायें और उसका विस्तार करें, बुर्जुआ एवं संशोधनवादी दलों के अन्तरविरोधों का लाभ उठायें, उनके जनाधार को संकुचित करें, तथा बुर्जुआ जनवादी व्यवस्था की सीमाओं और प्रतिगामी चरित्र का भण्डाफोड़ करें। ऐसा करने के बजाय यदि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के बीच ऐसी कोई सोच अंशतः भी अपनी जगह बनाती है कि वर्तमान शान्ति प्रक्रिया एक दीर्घकालिक या स्थायी प्रक्रिया है और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी नया संविधान तैयार करके जनता का जनवादी गणराज्य स्थापित कर लेंगे (और जो कमी रह जायेगी, उसे नये संविधान के तहत होने वाले चुनाव में बहुमत हासिल करके संविधान संशोधन करके पूरी कर लेंगे), तो यह एक भीषण आत्मघाती विभ्रम होगा। बात तब और चिन्तनीय हो जाती है, जब हम पाते हैं कि मार्क्सवाद में सैद्धान्तिक इज़ाफ़ा करने के नाम पर बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धात्मक जनवादी प्रणाली को सर्वहारा राज्यसत्ता का घटक बनाने की एक प्रबल लाइन ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर पहले से ही मौजूद रही है। इस लाइन के विरुद्ध ने.क.पा. (एकता केन्द्र–मसाल) ने संघर्ष किया था और वर्ष 2008 के अन्तिम तीन–चार महीनों के दौरान ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर भी इस दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव के विरुद्ध तीखा संघर्ष चला, जिसके कारण इस लाइन को पीछे हटना पड़ा। लेकिन यह दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन, पीछे हटने के बावजूद, अभी भी एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर मौजूद है और विभिन्न रूपों में प्रकट होती रहती है। इसकी अभिव्यक्तियों की आगे हम सिलसिलेवार चर्चा करेंगे। नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में एकता की जो प्रक्रिया फ़िलहाल जारी है, वह बेहद सकारात्मक बात है। लेकिन एक नकारात्मक बात यह है कि दक्षिणपन्थी अवसरवादी या सामाजिक जनवादी भटकाव अभी भी मुख्य ख़तरे के रूप में मौजूद है। इस भटकाव का जड़मूल से ख़ात्मा ही नेपाली क्रान्ति की सफलता की सर्वोपरि बुनियादी गारण्टी है।

नेपाली क्रान्ति की विजय की मंज़िल अभी दूर है और वहाँ पहुँचने की बुनियादी गारण्टी है विचारधारात्मक भटकावों से मुक्त पार्टी

नेपाली क्रान्ति का रास्ता अत्यन्त लम्बा है और यह बेहद प्रतिकूल विश्व ऐतिहासिक परिस्थितियों में आगे क़दम बढ़ा रही है। नेपाल मात्र 2 करोड़ 90 लाख आबादी का भूआवेष्ठित (चारों ओर ज़मीन से घिरा) देश है, जहाँ बुनियादी एवं अवरचनागत उद्योगों का विकास अत्यन्त कम हुआ है तथा अर्थव्यवस्था बहुत कम विविधीकृत (डायवर्सिफ़ाइड) है। देश की 85 फ़ीसदी आबादी गाँवों में बेहद विपन्न जीवन बिताती है। साक्षरता 50 प्रतिशत से भी कम है। कुपोषण आम बात है और बाल मृत्यु की दर 1000 में 62 है। एक तिहाई आबादी

(पेज 8 पर जारी)

विश्वव्यापी मन्दी पूँजीवाद की लाइलाज बीमारी का एक लक्षण है!

पूरी दुनिया में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख देने वाली इस मन्दी की तुलना 1930 के दशक की महामन्दी से ही की जा सकती है। अब अनेक बुर्जुआ अर्थशास्त्री भी कह रहे हैं कि यह पिछली महामन्दी से भी ज़्यादा विकराल साबित होगी। वैसे तो 1970 के दशक से ही विश्व पूँजीवाद मन्दी से पूरी तरह कभी उबर नहीं सका है। 1970 के दशक में शुरू हुई मन्दी लगातार बनी ही रही है। बीच-बीच में मन्दी के भीतर मन्दी का संकट भयंकर रूप में फूट पड़ता रहा है। लेकिन पिछले वर्ष के उत्तरार्द्ध में जो ज़बर्दस्त वित्तीय संकट फट पड़ा उसका असर तमाम बेलआउट पैकेजों के बावजूद फैलता ही जा रहा है। 1973 के तेल संकट और ब्रेट्टन वुड्स समझौते के टूटने के बाद पैदा हुई मन्दी, 1981-82 की मन्दी, 1987 में शेयर बाज़ारों के महाध्वंस, 1990 में 'एशियाई शेरों' की अर्थव्यवस्था के बर्बादी के कगार पर पहुँच जाने जैसे बीच के किसी भी भीषण आर्थिक संकट से इस स्थिति की तुलना नहीं की जा सकती। यह 1930 के दशक के बाद की सबसे बड़ी और गहरी महामन्दी है, लेकिन यह पिछली महामन्दी से अलग भी है। यह भूमण्डलीकरण के दौर की मन्दी है जिसका फैलाव वाकई वैश्विक पैमाने पर है। विश्व अर्थव्यवस्था का कोई हिस्सा इसकी मार से बचा नहीं रह सकता। हर पूँजीवादी संकट की तरह इसकी मार भी सबसे अधिक मेहनतकश अवाम के ऊपर पड़ रही है।

'बिगुल' के पाठकों के लिए अगले कुछ अंकों में हम इस मन्दी और पूँजीवाद के आम ढाँचागत संकट को समझने में मददगार सामग्री प्रस्तुत करेंगे। इसकी शुरुआत हम इस अंक में स्थिति के एक आम सर्वेक्षण से कर रहे हैं ताकि संकट की व्यापकता का अनुमान लगाया जा सके।

शेयर बाज़ार ध्वस्त होने से बेहाल-बदहवास स्टॉक ब्रोकर

न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज के बाहर बनी बुल (साँड़) की मूर्ति।

वर्तमान विश्वव्यापी मन्दी और आर्थिक तबाही के बारे में, एकदम सरल और सीधे-सादे ढंग से यदि पूरी बात को समझने की कोशिश की जाये, तो यह कहा जा सकता है कि अन्तहीन मुनाफ़े की अन्धी हवस में बेतहाशा भागती बेलगाम वित्तीय पूँजी अन्ततः बन्द गली की आख़िरी दीवार से जा टकरायी है। एकबारगी सब कुछ बिखर गया है। पूँजीवादी वित्त और उत्पादन की दुनिया में अराजकता फैल गयी है। कोई इस विश्वव्यापी मन्दी को "वित्तीय सुनामी" कह रहा है तो कोई "वित्तीय पर्ल हार्बर", और कोई इसकी तुलना वर्ल्ड ट्रेड टॉवर के ध्वंस से कर रहा है। दरअसल वित्तीय पूँजी का आन्तरिक तर्क काम ही इस प्रकार करता है कि निरुपाय संकट के मुक़ाम पर पहुँचकर वह आत्मघाती आतंकवादी के समान व्यवहार करते हुए विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की पूरी अट्टालिका में काफ़ी हद तक या पूरी तरह से ध्वंस करने वाला विस्फोट कर देती है।

अक्टूबर 2008 के पहले सप्ताह में अमेरिकी वित्तीय बाज़ार में आयी सुनामी ने जब पूरी दुनिया के वित्तीय तन्त्र को झकझोरकर रख दिया तो दुनियाभर के साम्राज्यवादियों और पूँजीपतियों ने, उसके सिद्धान्तकारों, सलाहकारों और राजनीतिक प्रतिनिधियों ने युद्ध स्तर पर भागदौड़ शुरू कर दी। तबाही का जो 'चेन रिएक्शन' शुरू हुआ उसने पूरी दुनिया के शेयर बाज़ारों, निवेश एवं वाणिज्य बैंकों को अपनी चपेट में ले लिया।

वॉल स्ट्रीट में मची खलबली ने पूरी दुनिया की वित्तीय व्यवस्था को झकझोर दिया। पूरी दुनिया के वित्तीय बाज़ार से 60 खरब डॉलर की रकम उड़नछू हो गयी। सितम्बर में ही अमेरिका के पाँच बड़े बैंक धराशायी हो चुके थे। उसके भी पहले, मध्य जुलाई में **इण्डी मैक** नामक मार्टगेज बैंक धराशायी हो चुका था। तबसे आठ शीर्षस्थ बैंक दिवालिया हो चुके हैं। सिर्फ़ सितम्बर के तीन सप्ताहों में **लीमैन ब्रदर्स, मैरिल लिंच** और **वाशिंगटन म्यूचुअल** ग़ायब हो गये तथा **फेनी माय** और **फ्रेडी मैक** का नियन्त्रण सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। दुनिया की सबसे बड़ी बीमा कम्पनी **ए. आई.जी.** को बचाने के लिए सरकार को 85 अरब डॉलर का बेलआउट देना पड़ा। महज दस दिनों में 10 खरब डॉलर की परिसम्पत्ति के साथ दुनिया की सबसे बड़ी बीमा कम्पनी, 15 खरब डॉलर की परिसम्पत्ति के साथ दुनिया के दो बड़े निवेश बैंक और 18 खरब डॉलर की सम्पत्ति के साथ अमेरिकी मॉर्टगेज बाज़ार की दो भीमकाय फ़र्में धराशायी हो गयीं।

अमेरिका और यूरोपीय देशों की सरकारें बड़े पूँजीपतियों को बचाने के लिए सैकड़ों अरब डालर की जनता की कमाई बेल आउट पैकेजों के रूप में लुटा चुकी हैं लेकिन अभी कोई असर होता नहीं दिख रहा है। मन्दी की आग दिन-ब-दिन फैलती जा रही है।

चित्र : नोटों की बौछार करके मन्दी की आग बुझाने की कोशिश बेल आउट दमकल कर्मी। एक अमेरिकी वेबसाइट पर दिया कार्टून।

1929 की महामन्दी और वर्तमान मन्दी में समानताएं

1929 की महामन्दी

स्टॉक मार्केट ध्वंस

1932: 1929 के अपने चरम मूल्य के मुकाबले शेयरों में 89 प्रतिशत की भारी गिरावट। 1929 के मूल्य फिर 1954 तक वापस नहीं

बैंक धराशायी

सरकारी सहायता न मिलने पर 1932 में सभी अमेरिकी बैंक धराशायी हो गये

सकल घरेलू उत्पाद

1932 में 50 प्रतिशत की गिरावट

बेरोजगारी

1 करोड़ 30 लाख लोग बेरोजगार हो गये। एक तिहाई आबादी बेहद ग़रीबी में डूब गयी।

फ़र्ज़ी निवेश (सट्टेबाज़ी) फ़ंडों के कारण भारी घाटा

वर्तमान मन्दी

स्टॉक मार्केट ध्वंस

1980 के दशक से एक के बाद एक शेयर बाज़ारों के ध्वंस का सिलसिला

बैंक धराशायी

विश्व भर में बैंकों का धराशायी होना पिछले दशक से ही शुरू हो गया था लेकिन अरबों डालर की सरकारी सहायता देकर उन्हें बचाया गया। इस बार अमेरिका के अनेक सबसे बड़े बैंक और वित्तीय कम्पनियाँ धराशायी हो चुके हैं।

सकल घरेलू उत्पाद

दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाएं तेजी से सिकुड़ रही हैं। 1930 के बाद से पहली बार विश्व अर्थव्यवस्था -0.5 प्रतिशत सिकुड़ जाने का अनुमान।

बेरोजगारी

विश्व भर में इस वर्ष 5 करोड़ 10 लाख बेरोज़गार हो जायेंगे। 1 अरब 40 करोड़ आबादी बेहद ग़रीबी में डूब गयी।

फ़र्ज़ी निवेश (सट्टेबाज़ी) फ़ंड

हेज फ़ंड: इन फ़ंडों की कुल परिसंपत्ति 2000 में 491 अरब डालर से बढ़कर 2007 में 1750 अरब डालर हो चुकी थी। जल्दी मुनाफ़े के चक्कर में ये फ़ंड ख़तरनाक ढंग सेसट्टे का खेल खेलते हैं।

1930 के दशक की मन्दी 1929 में वॉल स्ट्रीट शेयर बाज़ार के ध्वंस का परिणाम लगती थी, लेकिन उससे तो महज़ शुरुआत हुई थी। यह पूँजीवाद की अति-उत्पादन की लाइलाज बीमारी का एक लक्षण भर था। वर्तमान मन्दी की शुरुआत वित्तीय संकट से हुई है लेकिन यह भी पूँजीवाद की उसी लाइलाज बीमारी – अतिउत्पादन के संकट का परिणाम है।

1929 में शेयर मार्केट ध्वस्त होने के बाद बैंकों से पैसे निकालने के लिए लाइन में खड़े लोग

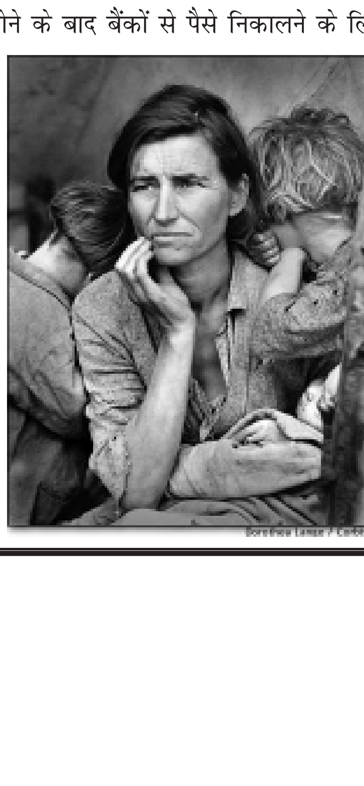

1929 की मन्दी में एक बेरोज़गार मज़दूर स्त्री अपने बच्चों के साथ

पूँजीवाद के ख़ात्मे के साथ ही इसका अन्त होगा!

पूँजीवाद हर चीज़ को ख़रीद-फ़रोख़्त की चीज़ बना देता है। वह मज़दूर की श्रमशक्ति को भी माल में बदल देता है। पूँजीपति मज़दूर को उसकी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मज़दूरी देता है और उस मूल्य से ज़्यादा मज़दूर का श्रम जो कुछ भी पैदा करता है, उसे हड़प लेता है। मज़दूर से निचोड़े गये इस अतिरिक्त मूल्य को ही वह पूँजी में बदलकर उसका निवेश करता है और फिर मज़दूर को और अधिक निचोड़ता है। जितना अधिक निचोड़ा जाता है उतना ही पूँजी संचय होता है और जितना अधिक पूँजी संचय होता है, उतना ही अधिक निचोड़ा जाता है। पूँजी संचय का यह निरपेक्ष और सामान्य नियम है कि समाज के एक छोर पर सम्पत्ति का संचय होता है और दूसरे छोर पर ग़रीबी का संचय। राष्ट्रीय आय में मज़दूरी का हिस्सा घटते जाने और पूँजीपतियों द्वारा लूटे गये अतिरिक्त मूल्य का हिस्सा बढ़ते जाने के साथ ही सर्वहारा वर्ग की सापेक्षिक ग़रीबी बढ़ती जाती है और साथ ही श्रम दशाओं और जीवनदशाओं में लगातार गिरावट उसे निरपेक्ष दरिद्रता की स्थिति में धकेलती जाती है। ज़्यादा मुनाफ़ा निचोड़ने के लिए पूँजीपति एक ओर तो काम के घण्टों को बढ़ाकर मज़दूर को उजरती ग़ुलाम बना देते हैं, दूसरी ओर उन्नत मशीनें लगाकर मज़दूरों की बड़ी आबादी की छँटनी करके कम मज़दूरों से उतनी ही या उससे भी कम पगार देकर ज़्यादा उत्पादन करते हैं, क्योंकि श्रम बाज़ार में मज़दूरों की बहुलता के चलते श्रमशक्ति का मोल घट गया रहता है। समस्या यह पैदा हो जाती है कि मुनाफ़ा कूटने की अन्धी हवस में पूँजीपति अराजक ढंग से ज़्यादा से ज़्यादा माल पैदा करते हुए सर्वहारा सहित सभी आम उत्पादकों को कंगाल करके उनकी क्रयशक्ति कम करते चले जाते हैं। क्रयशक्ति के सापेक्ष सामाजिक उत्पादन की अधिकता हो जाती है। गोदामों-दुकानों में माल अँटे पड़े रह जाते हैं और लोग उन्हें ख़रीद नहीं पाते। अतिरिक्त मूल्य पूँजीपति के पास नहीं आ पाता है। मन्दी छा जाती है। उत्पादन रुकने लगता है। पूँजी नष्ट होने लगती है।

अमेरिका में नौकरी की तलाश में जुटे बेरोज़गारों की भीड़

पूँजीवाद के अन्तर्गत अलग-अलग कारख़ानों में तो उत्पादन संगठित रहता है, लेकिन सामाजिक उत्पादन में अराजकता व्याप्त रहती है। जिस क्षेत्र में मुनाफ़ा अधिक होता है, पूँजीपति आपस में होड़ करते हुए उधर भाग निकलते हैं और उतना पैदा कर देते हैं, जितने के ख़रीदार नहीं होते। व्यापारिक गतिविधियाँ भी बनावटी माँग पैदा करके समाज की वास्तविक क्रयशक्ति को छुपाती हैं। जब तक बाज़ार में दाम चढ़ते रहते हैं, व्यापारी उद्योगपतियों को माल का ऑर्डर देते रहते हैं और बैंकर उन दोनों को ऋण मुहैया कराते रहते हैं। इस प्रकार बाज़ार में एक कृत्रिम समृद्धि बनी रहती है जो सापेक्षिक अतिउत्पादन पर पर्दा डालने का काम करती है। जब यह पर्दा हटता है तो मन्दी और आर्थिक संकट का दौर सामने होता है। कई उपादान होते हैं जो कृत्रिम समृद्धि के इस पर्दे को ज़्यादा से ज़्यादा लम्बे समय तक बनाये रखते हैं और यह समय जितना ही लम्बा होता है, पर्दा उतरने के बाद की असलियत भी उतनी ही अधिक भयावह होती है। जैसे, सूद से मुनाफ़ा कमाने वाली बैंकिंग पूँजी विशेषकर मध्यवर्गीय उपभोक्ताओं को कारख़ानों में उत्पादित माल ख़रीदने के लिए तरह-तरह के आकर्षक ऋण-पैकेज देती हैं। तमाम बैंक ज़्यादा से ज़्यादा उपभोक्ताओं को लुभाने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा लुभावनी शर्तों पर ऋण देने के लिए लुभाते हैं। फिर उनकी यही तिकड़म तब आत्मघाती सिद्ध होती है जब क्षमता से अधिक ले चुके लोग क़र्ज़ लौटा नहीं पाते, फलतः बैंक डूबने लगते हैं, वित्त बाज़ार में मन्दी आ जाती है, जो वास्तविक उत्पादन के क्षेत्र में गिरावट और मन्दी को और अधिक गम्भीर बना देती है। यही चीज़ अधिक वित्तीय जटिलताओं के साथ हाल के उस अमेरिकी सबप्राइम संकट के रूप में घटित हुई, जिससे वर्तमान विश्वव्यापी मन्दी की शुरुआत हुई।

ऊपर : सूरत में बेरोजगार मजदूरों का प्रदर्शन
नीचे : चीन में एक रोजगार मेले में बेरोजगारों की भीड़

उन्नीसवीं शताब्दी से ही पूँजीवाद एक कुण्डलाकार रास्ते से होकर, संकट-मन्दी के दौर, उबरने के दौर, और फिर तेजी के दौर के चक्रों से गुज़रता रहता था। **फ्रेडरिक एंगेल्स** ने इसका वर्णन इस प्रकार किया था : "*रफ़्तार तेज़ हो जाती है; धीमे क़दम तेज़ क़दमों में बदल जाते हैं। औद्योगिक तेज क़दम दौड़ते तेज क़दमों में बदल जाते हैं। दौड़ते क़दम उद्योग, वाणिज्य, क्रेडिट और सट्टाबाज़ारी गतिविधियों की लंगड़ी दौड़ में फर्राटा बन जाते हैं। अन्त में, कई अन्तिम, बदहवास छलांगों के बाद यह ध्वंस के रसातल में गिर पड़ते हैं।*" पूँजीवाद संकट और मन्दी, उससे उबरने, और फिर तेज़ी के चक्रों से लगातार गुज़रता रहा है। लेकिन हर अगली बार संकट पहले से अधिक गम्भीर होकर आता रहा है। संकट के दो चक्रों के बीच का अन्तराल प्रायः कम होता जाता रहा है और यदि कभी ऐसा नहीं होता रहा है तो अगली बार संकट अधिक भीषण रूप में सामने आता रहा है। इस प्रक्रिया में एक नया मुक़ाम था 1930 के दशक की महामन्दी और आर्थिक महाध्वंस, और वृद्धावस्था के असाध्य, अन्तकारी रोग जैसी नयी परिघटना सामने आयी 1970 के दशक से लगातार जारी दीर्घकालिक आर्थिक संकट के रूप में। 1973-74 के बाद से ही स्थिति यह है कि रोगी की तबीयत बीच-बीच में कुछ सँभलती है, कुछ राहत एवं उम्मीदों के आसार नज़र आते हैं और फिर रोगी नीमबेहोशी में चला जाता है। यानी आवर्ती चक्रीय क्रम में आने वाले संकट के दौरों के बाद ढाँचागत संकट का एक ऐसा दीर्घकालिक दौर शुरू हुआ है, जिसके बीच-बीच में राहत और सापेक्षिक तेज़ी की कुछ अल्पकालिक तरंगें उठती रही हैं और अब सितम्बर-अक्टूबर, 2008 में, लगभग दो वर्षों तक सबप्राइम संकट की मौजूदगी के बाद अमेरिका में वित्तीय ध्वंस के साथ ही विश्व वित्तीय तन्त्र के धराशायी होने और वास्तविक अर्थव्यवस्था में ठहराव और विघटन-संकुचन का जो सिलसिला एक नयी विश्वव्यापी मन्दी के रूप में सामने आया है, उसने पूरी पूँजीवादी दुनिया में हड़कम्प मचा दिया है।

प्रमुख अमेरिकी बुर्जुआ पत्रिका 'टाइम' का कवर
इस पर लिखा है : 'क्या पूँजीवाद काम कर रहा है?
जवाब है : नहीं!

पूँजीवाद के पास इस संकट का कोई समाधान नहीं है। मौजूदा विश्वव्यापी वित्तीय संकट ने सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान को एक बार फिर सही साबित किया है। एक बार फिर यह सिद्ध हो गया है कि साम्राज्यवाद के आगे पूँजीवाद की कोई और अवस्था नहीं है और ऐतिहासिक कारणों से साम्राज्यवाद की आयु भले ही कुछ लम्बी हो गयी हो, लेकिन अब एक सामाजिक-आर्थिक संरचना और विश्व-व्यवस्था के रूप में पूँजीवाद के दीर्घजीवी होने की सम्भावना निश्शेष हो चुकी है।

'बिगुल' के आगामी अंकों में हम सिलसिलेवार वर्तमान मन्दी के कारणों और इसके नतीजों का लेखा-जोखा पेश करेंगे।

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ

(पेज 5 से आगे)

सरकारी ग़रीबी रेखा के नीचे जीती है और लगभग आधा देश बेरोज़गार है। दसियों लाख ग़रीब नेपाली भारत में, खाड़ी के देशों में और दूसरे देशों में मज़दूरी करते हैं तथा भारत और ब्रिटेन की सेनाओं में भाड़े के सिपाही के तौर पर काम करते हैं। इनकी कमाई और पर्यटन उद्योग नेपाल के विदेशी मुद्रा भण्डार का मुख्य स्रोत है।

आम जनता की इन भीषण जीवन-स्थितियों ने नेपाल में सशस्त्र जनक्रान्ति का अनुकूल वस्तुगत आधार तैयार किया। राजशाही के निरंकुश दमन तन्त्र और राजनीतिक जीवन में सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार ने आग में घी का काम किया। लेकिन आज की चुनौती यह है कि विरोधी ताक़तों से घिरे, एक भूआवेष्ठित, बेहद पिछड़े देश में, एक ऐसे समय में जब दुनिया में मदद के लिए एक भी समाजवादी देश मौजूद नहीं है, सर्वहारा क्रान्ति किस प्रकार जीवित रहेगी और आगे बढ़ती रहेगी। हमारी यह स्पष्ट और दृढ़ धारणा है कि प्रतिकूलतम परिस्थितियाँ भी क्रान्ति की राह को दुर्गम, लम्बा और जटिल भले बना दें, पर उसका गला नहीं घोंट सकतीं। इतिहास गवाह है कि सर्वहारा क्रान्तियाँ तभी पराजित हुई हैं या उन्हें कुचल पाना भी दुश्मनों के लिए तभी सम्भव हो पाया है, जब उनकी नेतृत्वकारी शक्ति विचारधारात्मक कमज़ोरी या भटकाव या किसी गम्भीर ग़लती के कारण भीतर से कमज़ोर हो गयी। इतिहास गवाह है कि बाहर के शत्रु कई बार सर्वहारा क्रान्तियों को नहीं कुचल सके, लेकिन भीतर से पैदा हुए भटकाव ने पूँजीवादी पथगामियों के लिए फलने-फूलने का आधार तैयार कर दिया और फिर इन भितरघातियों के हाथों क्रान्तियाँ पराजित हो गयीं। तात्पर्य यह कि विपरीततम वस्तुगत परिस्थितियों में भी, एक विचारधारात्मक रूप से सुदृढ़ पार्टी क्रान्ति को मृत्यु या विपथगमन से बचा सकती है, भले ही उसका रास्ता कुछ और लम्बा हो जाये। नेपाली क्रान्ति के सामने भी आज यही प्रश्न केन्द्रीय है। नेपाली क्रान्ति लोक जनवादी मंज़िल को निर्णायक रूप से पूरा करके समाजवादी संक्रमण की मंज़िल में प्रविष्ट हो, इसमें अभी लम्बा समय लगेगा। तब तक क्रान्ति की निरन्तरता के लिए पार्टी की विचारधारात्मक मज़बूती पहली शर्त है। यदि यह शर्त पूरी हुई तो कालान्तर में विश्व परिस्थितियाँ नेपाली क्रान्ति के लिए अधिक अनुकूल हो जायेंगी। विश्व पूँजीवाद के अभूतपूर्व ढाँचागत संकट के सुदीर्घ दौर में अभी जो महाध्वंस जैसी विश्वव्यापी मन्दी का विस्फोट हुआ है, इससे पूरी दुनिया में सर्वहारा क्रान्ति की धारा जल्दी भले ही आगे न बढ़े (क्योंकि इसके लिए हरावल दस्तों की वैचारिक-राजनीतिक-सांगठनिक मज़बूती अनिवार्य है), लेकिन कालान्तर में दुनिया के विभिन्न देशों में व्यापक जन उभारों और जनान्दोलनों का उठ खड़े होना अवश्यम्भावी है। साथ ही, अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का उग्र हो जाना भी वर्तमान संकट की अनिवार्य तार्किक परिणति होगी। ऐसी स्थिति में साम्राज्यवादी शक्तियाँ, भारतीय विस्तारवाद और चीनी "बाज़ार समाजवाद" नेपाली क्रान्ति को कुचलने के लिए अपनी शक्ति उस हद तक नहीं लगा पायेंगी और अन्तर साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठा पाना भी सम्भव होगा। यदि नेपाली क्रान्ति विचारधारात्मक-राजनीतिक कारणों से भीतर से कमज़ोर या विघटित नहीं हुई तो निकट भविष्य में विश्व परिस्थितियाँ उसके अग्रवर्ती विकास के लिए अधिक अनुकूल होंगी। कहने का मतलब यह कि नेपाल की एकीकृत पार्टी में दक्षिणपन्थी अवसरवादी विचलनों के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष और उस संघर्ष की सफलता पर ही नेपाली क्रान्ति का भविष्य मूलत: और मुख्यत: निर्भर है।

नेपाली क्रान्ति अभी भी रणनीतिक सन्तुलन की ही मंज़िल में है, रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल अभी दूर है

1996 से 2006 तक जारी जनयुद्ध के दौरान जनमुक्ति सेना ने देश के लगभग 80 प्रतिशत देहाती क्षेत्र को मुक्त करा लिया था। मुक्त क्षेत्र में समान्तर राज्यतन्त्र खड़ा करने का काम भी गति पकड़ चुका था। सड़क, स्कूल, अस्पताल बनाने, उत्पादन एवं विनिमय के क्षेत्र में सहकारिता-आन्दोलन संगठित करने और क्रान्तिकारी अदालतों द्वारा भ्रष्ट एवं जालिम भूस्वामियों को दण्डित करने का काम ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व में सफलतापूर्वक शुरू हो चुका था। जब शाही सेना दमन के लिए आगे आयी, तब तक जनमुक्ति सेना देहातों में अपना आधार मज़बूत बना चुकी थी। इसके बाद 2005 में पार्टी ने रणनीतिक सन्तुलन से रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल में प्रवेश की घोषणा तो कर दी, लेकिन गाँवों से शहरों को घेरकर और शहरों में जन-विद्रोह संगठित करके राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा करने की स्थिति सम्भव नहीं हो सकी। कारण कि नेपाल की राज्यसत्ता अर्द्धऔपनिवेशिक चीन की तरह कमज़ोर और विश्रृंखलित नहीं थी। साथ ही, 1930 और 1940 के दशकों की विश्व परिस्थितियों से भिन्न, नेपाली शासक वर्ग को साम्राज्यवादियों और विश्व पूँजीवाद से अधिक व्यवस्थित ढंग से मदद मिल रही थी। शहरों में उसका आधार अधिक मज़बूत था। साथ ही, क्रान्तिकारी संघर्ष के आगे बढ़ने के बावजूद, आशा के विपरीत, शाही नेपाल सेना में विद्रोह की स्थिति नहीं बन सकी। यह सही है कि जनयुद्ध ने ही एक देशव्यापी क्रान्तिकारी उभार की स्थिति पैदा की थी, जिसके चलते संसदीय बुर्जुआ पार्टियों को भी अप्रैल 2006 में देशव्यापी जनान्दोलन में शामिल होने और माओवादियों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। लेकिन यह भी सही है कि तब की स्थिति में जनयुद्ध की निर्णायक विजय के ज़रिये राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा सम्भव नहीं था। स्थिति यह थी कि न तो क्रान्ति की विजय सम्भव थी और न ही शासक वर्ग उसे कुचल सकता था। ऐसे समय में सरकार और माओवादियों के बीच शान्ति वार्ता के लिए ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने जो प्रयास किये, वे सर्वथा समयानुकूल थे।

आज पश्चदृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि जनयुद्ध के रणनीतिक सन्तुलन की मंज़िल से रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल में प्रवेश का ने.क.पा. (माओवादी) का 2005 का आकलन अपरिपक्व एवं समय-पूर्व था। नेपाली क्रान्ति को अगली मंज़िल में जाने के लिए नये सिरे से शक्ति जुटानी थी तथा अनुकूल समय की प्रतीक्षा के लिए कुछ विराम लेना था। सच्चाई यह है कि नेपाल की नवजनवादी क्रान्ति आज भी रणनीतिक सन्तुलन की ही मंज़िल में है। रणनीतिक आक्रमण की मंज़िल अभी दूर है। न केवल राजा से शान्ति वार्ता के बाद कोइराला के नेतृत्व में बनी सर्वदलीय अन्तरिम सरकार, बल्कि संविधान सभा के चुनाव के बाद प्रचण्ड के नेतृत्व में बनी बहुदलीय सरकार भी वस्तुत: एक आरजी (प्रॉविज़नल) सरकार ही है। मौजूदा संविधान सभा में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी लगातार संघर्ष करके और संविधान सभा के बाहर से जन संघर्षों का दबाव बनाकर ज़्यादा से ज़्यादा जनपक्षधर बुर्जुआ जनवादी संविधान बनाने की कोशिश भर ही कर सकते हैं। लेकिन राजनीतिक पार्टियों के वर्ग-विश्लेषण में विश्वास करने वाला कोई भी व्यक्ति यह सपने में भी नहीं सोच सकता कि मौजूदा संविधान सभा कोई ऐसा संविधान बना सकती है, जिसके अन्तर्गत एक लोक जनवादी गणराज्य क़ायम हो सकता है। ऐसा सोचना प्रकारान्तर से शान्तिपूर्ण संक्रमण की संशोधनवादी थीसिस को मानना होगा।

हमारी स्पष्ट धारणा है कि वर्तमान संविधान सभा जो नया संविधान बनायेगी, उसके द्वारा भी बुर्जुआ जनवादी गणराज्य ही स्थापित होगा। नये संविधान के अन्तर्गत बनने वाली सरकार यदि एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) की होगी, तब भी वह एक 'प्रॉविज़नल' सरकार ही होगी। ऐसी सरकार जैसे ही साम्राज्यवादी विश्व से निर्णायक विच्छेद और क्रान्तिकारी भूमि सुधार के लिए क़दम उठायेगी, वैसे ही सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियाँ लामबन्द होकर उसके विरुद्ध संघर्ष छेड़ देंगी और बुर्जुआ वर्ग और भूस्वामी वर्ग निश्चय ही सशस्त्र प्रतिक्रान्ति की कोशिश करेंगे। तब नेपाली क्रान्ति को निश्चय ही सशस्त्र संघर्ष की नयी मंज़िल में प्रवेश करना होगा। उस नयी मंज़िल में, ज़्यादा सम्भावना यही है कि क्रान्ति-मार्ग के संश्लेषण में, दीर्घकालिक लोकयुद्ध का पहलू गौण होगा और आम बग़ावत (जनरल इन्सरेक्शन) का पहलू प्रधान होगा। वर्तमान संक्रमण काल तथा संविधान सभा और 'प्रॉविज़नल' सरकार के वर्तमान कार्यकाल के बारे में यदि किसी प्रकार का संशोधनवादी विभ्रम न हो, तो इस अवधि का इस्तेमाल कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी बुर्जुआ जनवाद के वास्तविक चरित्र को नंगा करने और भावी निर्णायक संघर्ष के लिए जन-समुदाय को तैयार करने के लिए कर सकते हैं।

चिन्ता की बात यह है कि ने.क.पा. (माओवादी) का अब तक का व्यवहार इस कसौटी पर खरा नहीं उतरा है। सकारात्मक बात यह है कि ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) पहले से ही ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर के संशोधनवादी विचलनों के विरुद्ध संघर्ष करती रही है। हाल के दिनों में ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर भी इस प्रश्न पर दो लाइनों का संघर्ष उठ खड़ा हुआ। हम आशा करते हैं कि एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) संशोधनवादी भटकावों-विच्युतियों से छुटकारा पाकर आने वाले दिनों में नेपाली क्रान्ति को आगे बढ़ाने में सफल होगी।

ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर संक्रमण काल के कार्यभारों के बारे में ग़लत सोच, रणकौशल को रणनीति बनाने की भूल, और 'प्रतिस्पर्द्धात्मक संघात्मक गणराज्य' की दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन

प्रचण्ड के नेतृत्व में नयी सरकार के सत्तारूढ़ होने के कुछ समय बाद ही संक्रमण की अवधि के बारे में ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर दो दृष्टिकोण उभरकर सामने आये। केन्द्रीय कमेटी के भीतर, प्रचण्ड के नेतृत्व में एक धड़े ने 'प्रतिस्पर्द्धात्मक संघीय गणराज्य' की स्थापना को तात्कालिक लक्ष्य बनाने की बात कही और 'लोक जनवादी गणराज्य' को दूरगामी या रणनीतिक लक्ष्य बताया। मोहन 'किरन' वैद्य, सी.पी. गजुरेल, राम बहादुर थापा 'बादल' आदि के दूसरे शक्तिशाली धड़े ने इस सोच को दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव बताते हुए कहा कि राजशाही की समाप्ति और संविधान सभा के चुनाव के साथ ही बुर्जुआ ढंग का संघात्मक गणराज्य संस्थाबद्ध हो चुका है और अब हमारा लक्ष्य है लोक गणराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष करना। प्रचण्ड की यह नयी लाइन वस्तुत: बहुदलीय संसदीय जनवादी प्रणाली को सर्वहारा राज्यसत्ता का 'ऑर्गन' मानने की ने.क.पा. (माओवादी) की पुरानी सोच का ही नया विस्तारित रूप थी। इस थीसिस के अनुसार, पार्टी को फ़िलहाल संघीय प्रतिस्पर्द्धात्मक संसदीय व्यवस्था में ही काम करने की दृष्टि से सरकार चलानी थी और संविधान लिखना था। इसमें अन्तर्निहित था कि सरकार चलाते हुए अपनी जनोन्मुख नीतियों के लिए संघर्ष करते हुए तथा ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख संविधान-निर्माण के लिए संघर्ष करते हुए ने.क.पा. (माओवादी) जनता के बीच अन्य बुर्जुआ और संशोधनवादी दलों को एक लम्बी प्रक्रिया में अलग-थलग कर देगी और संसदीय चुनावी प्रतिस्पर्द्धा में उन्हें निर्णायक रूप से पीछे छोड़ने के बाद लोक जनवादी गणराज्य की दिशा में आगे क़दम बढ़ायेगी। ज़ाहिर है कि यह शान्तिपूर्ण संक्रमण की लाइन का ही नया रूप था। इस लाइन की जो व्याख्याएँ आ रही थीं, उनसे तथा सरकार में शामिल ने.क.पा. (माओवादी) के मन्त्रियों के कई निर्णयों से इस लाइन का असली चरित्र खुलकर सामने आने लगा था और इसका विरोध भी मुखर होने लगा था।

यह बात स्पष्ट है कि प्रचण्ड के नेतृत्व में 'प्रॉविज़नल' सरकार का गठन, राजशाही के ख़ात्मे के बावजूद, राज्यसत्ता-परिवर्तन नहीं है। राज्यसत्ता का मुख्य अंग अभी भी वही सेना है, वही नौकरशाही और वही न्यायपालिका है, बुर्जुआ राज्यसत्ता के मुख्य अवलम्ब के रूप में काम करने वाली धार्मिक संस्थाओं की ताक़त भी फ़िलहाल अक्षुण्ण है, मीडिया पर भी मुख्यत: बुर्जुआ ताक़तें ही हावी हैं और यहाँ तक कि मिली-जुली सरकार में भी संशोधनवादी पार्टियाँ और धुर प्रतिक्रियावादी क्षेत्रीय बुर्जुआ दल शामिल हैं। ज़ाहिर है कि वर्तमान संविधान सभा और मिली-जुली सरकार में भागीदारी एक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी के लिए अन्तरिम अवधि के अल्पकालिक रणकौशल (टैक्टिक्स) से अधिक कुछ नहीं हो सकता। इसे राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा क़तई नहीं कहा जा सकता। लेकिन पार्टी के विदेश ब्यूरो के सदस्य लक्ष्मण पन्त ने *'कोइरालावंशकापतन'* शीर्षक अपने लेख में यह स्थापना दे डाली कि नेपाल में सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग की संयुक्त तानाशाही के रूप में एक नयी राज्यसत्ता अस्तित्व में आ चुकी है, जो मार्क्सवादी विज्ञान में एक इज़ाफ़ा है। इस प्रकार लक्ष्मण पन्त ने सरकार को ही राज्यसत्ता बना दिया और नयी सरकार के गठन को नयी राज्यसत्ता का अस्तित्व में आना बता दिया। इस नग्न संशोधनवादी प्रस्थापना वाले लेख का विस्तृत पोस्टमार्टम हम **'बिगुल'** के अगस्त-सितम्बर 2008 के अंक में कर चुके हैं। ग़ौरतलब है कि यह लेख ने.क.पा. (माओवादी) के मुखपत्र **'रेड स्टार'** के सितम्बर 21-30, 2008 के अंक में भी प्रकाशित हुआ था और इसके विरोध में कोई टिप्पणी नहीं छपी थी।

'रेड स्टार' के अंकों में एकाधिक बार यह अहम्मन्यतापूर्ण दावा किया गया है कि लेनिन ने संविधान सभा का जो नारा दिया था, वह अक्टूबर क्रान्ति के बाद पूरा नहीं हुआ था, लेकिन नेपाली क्रान्ति ने उसे पूरा कर दिखाया। लेनिन के समय में संविधान सभा के चुनाव में बहुमत हासिल नहीं कर पाने के बाद उसे भंग कर दिया गया था, लेकिन नेपाल में हमने संविधान सभा में भी जीत हासिल करके सर्वहारा जनवाद की अवधारणा को व्यवहार में आगे विकसित किया है। इस बड़बोलेपन के दिवालियेपन और संशोधनवादी चरित्र पर ग़ौर करना ज़रूरी है। लेनिन के समय में संविधान सभा बनाम सोवियत का प्रश्न बुर्जुआ राज्यसत्ता के बलपूर्वक ध्वंस के बाद पैदा हुआ था। बोल्शेविकों के सामने प्रश्न था कि नयी सर्वहारा सत्ता का, सर्वहारा जनवाद का, या यूँ कहें कि सर्वहारा अधिनायकत्व का मुख्य 'ऑर्गन' क्या होगा? सैद्धान्तिक तौर पर बहुदलीय संसदीय जनतन्त्र को बोल्शेविक पहले ही ख़ारिज़ कर चुके थे। संविधान सभा को नयी सर्वहारा सत्ता का एक 'ऑर्गन' बनाने के बारे में कुछ समय तक उन्होंने सोचा था, लेकिन फिर जल्दी ही वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सोवियतें ही सर्वहारा सत्ता का मुख्य 'ऑर्गन' होंगी, वे विधायिका और कार्यपालिका दोनों की भूमिका निभायेंगी तथा उनके चुनाव में शोषक वर्गों की कोई भागीदारी नहीं होगी। दो वर्षों के अनुभव के बाद बोल्शेविक पार्टी इस नतीजे पर पहुँची कि सोवियतों के माध्यम से शासन चलाने या सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करने में पार्टी की संस्थाबद्ध नेतृत्वकारी भूमिका होगी तथा ट्रेडयूनियनों की भूमिका राज्यसत्ता की "आरक्षित शक्ति" की या शासन चलाने के प्रशिक्षण

(पेज 9 पर जारी)

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ

(पेज 8 से आगे)

केन्द्र की होगी। ने.क.पा. (माओवादी) इस बात को भूल जाती है कि नेपाल में संविधान सभा का प्रश्न राज्यसत्ता के बलात ध्वंस के बाद नहीं उठा है। यह वर्ग-संघर्ष में रणनीतिक शक्ति-सन्तुलन की संक्रमण-अवधि के दौरान एक अन्तरिम समझौते की व्यवस्था के रूप में सामने आया है और ऐसी संविधान सभा के चुनाव में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरना इतनी बड़ी क्रान्तिकारी उपलब्धि नहीं है, जिसके आधार पर बोल्शेविक पार्टी के अनुभवों के समाहार को संशोधित करने और मार्क्सवादी विज्ञान में इज़ाफ़ा करने का दावा ठोंक दिया जाये। ऐसा वही कर सकता है जो शान्ति समझौते और संविधान सभा के चुनाव को अक्टूबर क्रान्ति की तरह राज्यसत्ता परिवर्तन की घटना माने। कहना नहीं होगा कि यह बेहद सतही किस्म की संशोधनवादी समझ ही हो सकती है।

सरकार में भागीदारी के रणकौशलात्मक इस्तेमाल के बजाय "सरकार चलाने" का दक्षिणपन्थी भटकाव

मिली-जुली अन्तरिम सरकार के भीतर नेतृत्वकारी भूमिका निभाते हुए ने.क.पा. (माओवादी) के प्रतिनिधियों का जो आचरण रहा है, उसमें से भी दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव की स्पष्ट दुर्गन्ध आती रही है। सरकार में शामिल होते समय ने.क.पा. (माओवादी) के सामने तीन स्पष्ट कार्यभार थे : **पहला**, ज़्यादा से ज़्यादा जनपक्षधर संविधान बनाना, **दूसरा**, शान्ति-प्रक्रिया को तार्किक परिणति तक पहुँचाना और **तीसरा**, सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक परिवर्तन या राज्य और समाज के पुनर्गठन के लिए प्रयास करना। इन तीनों कार्यभारों की बुनियादी अन्तर्वस्तु एक थी और वह यह कि बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को अधिकतम सम्भव तेज़ और रैडिकल ढंग से पूरा करने के लिए बुर्जुआ वर्ग के ऊपर दबाव बनाया जाये, इस प्रक्रिया में उनके चरित्र को और बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं को जनता के सामने ज़्यादा से ज़्यादा स्पष्ट किया जाये, बुर्जुआ वर्ग को ज़्यादा से ज़्यादा अलग-थलग किया जाये, जनयुद्ध की उपलब्धियों को और वैकल्पिक सत्ता केन्द्रों को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुए अपने सामाजिक आधार का विस्तार किया जाये, जनान्दोलनों के द्वारा मेहनतकश वर्गों की पहलक़दमी और क्रान्तिकारी सक्रियता को बरकरार रखा जाये तथा बुर्जुआ वर्ग के साथ फ़ौरी समझौते की इस अवधि के समाप्त होते ही लोक जनवादी गणराज्य की स्थापना के निर्णायक संघर्ष की सर्वतोमुखी तैयारी को कमान में रखकर ही अपनी सारी कार्रवाइयाँ संचालित की जायें। लेकिन व्यवहारत: देखने में यह आया कि संविधान निर्माण और भूमि-सुधार, रोज़गार के अधिकार, मज़दूरों के अधिकार, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के अधिकार को मूल नागरिक अधिकार बनाने को लेकर संविधान सभा के भीतर और बाहर प्रयास करने के बजाय माओवादियों ने मुख्य ज़ोर सरकार चलाने पर दिया। उन्होंने बुर्जुआ दलों को 'एक्सपोज़' करके अपना जन-समर्थन मज़बूत करने के बजाय सरकार के बुर्जुआ विकास के क़दमों और शासकीय "कल्याणकारी", "विकास" की कार्रवाइयों द्वारा अपना सामाजिक आधार मज़बूत करने का सुधारवादी रास्ता चुना। प्रधानमन्त्री प्रचण्ड और वित्तमन्त्री बाबू राम भट्टराई लगातार पूँजीपतियों को आश्वस्त करते रहे कि उन्हें पूँजी लगाने (यानी मेहनतकशों को निचोड़ने) का पूरा अवसर मिलेगा क्योंकि नेपाली क्रान्ति का आज का कार्यभार है सामन्ती निरंकुश सामाजिक ढाँचे को पूँजीवादी जनवादी ढाँचे में रूपान्तरित करना। सितम्बर में बाबू राम भट्टराई ने जो बजट पेश किया उसमें भारत और चीन की विकास-परियोजनाओं की तर्ज़ पर 'पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप' पर बल दिया गया। वैसे कहने के लिए उन्होंने सहकारिता को अर्थव्यवस्था का दूसरा स्तम्भ बताया, लेकिन ज़ाहिर है कि यह महज़ एक रस्मी बात थी। मौजूदा नौकरशाही तन्त्र और सामाजिक-आर्थिक ढाँचे के अन्तर्गत नेपाल में केवल बुर्जुआ ढंग की सहकारिता ही विकसित हो सकती है। जहाँ तक जनता के क्रान्तिकारी सहकारिता आन्दोलन की बात है, शासकीय कार्रवाइयों पर ही मुख्य बल देने के कारण देहात के पुराने मुक्त क्षेत्रों में लोकसत्ता के जो प्रारम्भिक रूप विकसित हुए थे, जब वे ही आज ठहराव और विघटन का शिकार हो रहे हैं तथा जन पहलक़दमी कुन्द हो रही है, तो आम जनता का सहकारी आन्दोलन भला कैसे आगे विकसित हो सकता है? स्पष्ट है कि ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर जो दक्षिणपन्थी धड़ा रहा है, वह संविधान-लेखन और सरकार चलाने की प्रक्रिया में बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं को एक्सपोज़ करके नवजनवादी क्रान्ति के लिए जनलामबन्दी को आगे बढ़ाने के बजाय लोकप्रिय सुधारवादी शासकीय क़दमों से लोकप्रियता अर्जित करके आगामी चुनावों में सफलता की गारण्टी चाहता है, वह नीचे से नहीं बल्कि ऊपर से (यानी सरकार के ज़रिये) जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को पूरा करना चाहता है और इस प्रक्रिया में वर्ग-संघर्ष को नहीं बल्कि उत्पादक शक्तियों के विकास को कुंजीभूत कड़ी बनाकर अपनी भूमिका तय कर रहा है। यह माओवाद नहीं, बल्कि देङवाद है।

सरकार में रहते हुए हर सम्भव जनकल्याणकारी क़दम उठाते हुए माओवादी यदि सतत प्रचार की कार्रवाई द्वारा जनता को बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं से अवगत कराते रहते और उनका मुख्य ज़ोर आर्थिक विकास के बजाय यदि जन संघर्षों को आगे बढ़ाने पर होता, तो शायद किसी को आपत्ति नहीं होती। लेकिन यहाँ तो मामला ही उलटा है। कोई आश्चर्य नहीं कि आज ('रेड स्टार' में ही छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक़) रोल्पा के पुराने आधार क्षेत्र की जनता यह सोचने लगी है कि माओवादी भी अब अपना क्रान्तिकारी लक्ष्य भूलकर काठमाण्डू की कुलीनतावादी संसदीय पार्टियों के सहयात्री बन चुके हैं। मामले की गम्भीरता तब और बढ़ जाती है, जब पता चलता है कि विगत 27 जनवरी को मन्त्रिमण्डल ने दो अध्यादेश जारी करके एक निवेश बोर्ड का गठन किया और एक विशेष आर्थिक क्षेत्र ('सेज') को मंज़ूरी दे दी। इसके पहले 16 जनवरी को नेपाली कांग्रेस को छोड़कर छह बड़ी राजनीतिक पार्टियों के बीच इस बात पर आम सहमति बनी कि कुछ बुनियादी सेवा क्षेत्रों में हड़ताल पर रोक लगा दी जाये। इन क्षेत्रों में अस्पताल, यातायात और कस्टम ऑफ़िसों के अतिरिक्त उद्योगों को भी रखा गया है। उल्लेखनीय है कि विकास के नाम पर हड़ताल का अधिकार छीनने के निर्णय में माओवादी उस देश में भागीदार बन रहे हैं जहाँ 1995 में पहली बार जो श्रम क़ानून बने वे केवल 6 प्रतिशत मज़दूरों पर लागू होते हैं। विगत दिसम्बर में न्यूनतम वेतन लागू करने की माँग को लेकर नेपाल के 20,000 जूट मिल मज़दूरों ने जुझारू आन्दोलन चलाया था। अब विकास के नाम पर माओवादियों के नेतृत्व वाली सरकार मज़दूरों से यह अधिकार भी छीन लेना चाहती है। सर्वहारा वर्ग की पहलक़दमी को समाप्त करने वाले इस निर्णय को किसी भी रणकौशल के नाम पर जायज नहीं ठहराया जा सकता। यहाँ पर नेपाल के कॉमरेडों को इतिहास की एक बहस की याद दिलाना हम ज़रूरी समझते हैं। समाजवादी संक्रमण के दौर में भी लेनिन मज़दूरों को ट्रेडयूनियनों के माध्यम से संघर्ष का अधिकार देने के उत्कट पक्षधर थे। त्रात्स्की और बुखारिन द्वारा ट्रेडयूनियनों के सरकारीकरण के प्रस्ताव का विरोध करते हुए उन्होंने कहा था कि चूँकि सर्वहारा अधिनायकत्व की शासकीय मशीनरी के भीतर बुर्जुआ और नौकरशाहाना विकृतियाँ मौजूद हैं, इसलिए मज़दूर वर्ग को ट्रेडयूनियनों के ज़रिये अपने अधिकारों की हिफ़ाजत के लिए संघर्ष का अधिकार होना चाहिए। यानी जब ट्रेड यूनियनों के हड़ताल के अधिकार को समाजवादी संक्रमण के दौर में भी नहीं छीना जा सकता, तो नेपाल की मिली-जुली प्रॉविज़नल सरकार में शामिल माओवादियों द्वारा विकास के नाम पर उठाये गये इस क़दम को सही भला कैसे सिद्ध किया जा सकता है? यदि क्रान्ति के व्यापक हित में यह ज़रूरी भी था, तो माओवादियों को मज़दूर वर्ग के बीच पार्टी के राजनीतिक वर्चस्व और साख के आधार पर उसे हड़ताल न करने के लिए तैयार करना चाहिए था, न कि बुर्जुआ पार्टियों के साथ आम सहमति बनाकर ऊपर से लादे गये किसी शासकीय निर्णय के द्वारा।

सेनाओं के विलय का सवाल : कुछ शंकाएँ और कुछ सवाल

इसी सम्बन्ध में कुछ और अहम मुद्दों पर भी विचार करना ज़रूरी है। नेपाल की वर्तमान सेना (जो भूतपूर्व शाही सेना है) के साथ जनमुक्ति सेना का विलय करके एक राष्ट्रीय सेना के निर्माण पर माओवादी काफ़ी बल देते रहे हैं, जो कि शान्ति समझौते की एक शर्त रही है। लेकिन ज़रूरी नहीं कि यह क़दम क्रान्ति के हक़ में ही हो। परस्पर विरोधी वर्ग-चरित्र वाली इन दोनों सेनाओं की सारभूत एकता सम्भव ही नहीं। यह केवल एक रणकौशलात्मक क़दम ही हो सकता है जिसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जनमुक्ति सेना की विचारधारात्मक-राजनीतिक तैयारी कितनी पुख़्ता है और बुर्जुआ सेना के ज़्यादा से ज़्यादा आम जवानों को क्रान्ति के पक्ष में जीत लेने में वह किस हद तक सक्षम है! यदि ये दोनों शर्तें पूरी नहीं होती हैं, तो विलय की प्रक्रिया जनमुक्ति सेना के बड़े हिस्से को भी पतित करके एक बुर्जुआ सेना में तब्दील कर सकती है और जनता तथा जनयुद्ध के दौर की सारी उपलब्धियों को अरक्षित करके बुर्जुआ वर्ग के रहमोकरम पर छोड़ सकती है। इस आशंका के पीछे एक मज़बूत आधार है। जनमुक्ति सेना की क़तारों में अतीत में ऐसे सैन्यवादी और अराजकतावादी भटकाव देखने को मिलते रहे हैं जो राजनीतिक शिक्षा के अभाव के प्रमाण रहे हैं। ऐसी सेना के एक बड़े हिस्से का यदि बुर्जुआकरण हो जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। आज पीछे मुड़कर देखने पर इस बात पर भी विचार करना ज़रूरी लगता है कि जिन दिनों जनयुद्ध शिखर पर था उन दिनों में भी शाही सेना की क़तारों में कोई विद्रोह क्यों नहीं हुआ? यह ख़बर भी यदि सही है तो विचारणीय है कि कैण्टोनमेण्ट में रहने के दौरान, विगत एक वर्ष के दौरान जनमुक्ति सेना के एक हिस्से में निराशा भी फैलती रही है और कुछ मुक्ति योद्धा घरों को वापस भी लौटते रहे हैं।

हमारा मानना है कि शान्ति समझौते के दौरान पूरी जनमुक्ति सेना को अपने हथियार संयुक्त राष्ट्र संघ के मिशन की देखरेख में सौंपना और कैण्टोनमेण्ट में रहना यदि ज़रूरी था, तो भी पार्टी को जनता के बीच से आत्मरक्षार्थ स्वयंसेवक दस्तों और जन मिलिशिया के रूप में नये सिरे से जन समुदाय को हथियारबन्द करने की प्रक्रिया चलानी चाहिए थी। अव्वलन तो होना यह चाहिए था कि जनमुक्ति सेना के एक हिस्से को ऊपरी तौर पर विघटित करके जनता के बीच फैला दिया जाता, लेकिन हम नहीं जानते कि ऐसा सम्भव था या नहीं।

पूरी पार्टी को खुला करने का प्रश्न और हमारी शंकाएँ

हमारा यह भी मानना है कि संविधान सभा चुनावों में भागीदारी से लेकर सरकार में भागीदारी तक के पूरे दौर में, पूरी पार्टी को खुला और क़ानूनी बनाना किसी भी रूप में उचित नहीं है। न केवल ने.क.पा. (माओवादी) चुनाव के समय से खुली रही है, बल्कि विलय के पहले ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) ने भी जनमोर्चा को भंग करके पूरे केन्द्रीय नेतृत्व समेत पूरी पार्टी को खुला करने की घोषणा की। हमारा मानना है कि प्रॉविज़नल सरकार की वर्तमान संक्रमण अवधि का रणकौशल के रूप में इस्तेमाल करते हुए, पार्टी के भूमिगत ढाँचे को बनाये रखा जाना चाहिए तथा उसके एक हिस्से को ही बुर्जुआ जनवाद की परिस्थितियों के भरपूर इस्तेमाल के लिए खुला किया जाना चाहिए।

क्रान्तिकारी वैकल्पिक सत्ता की मौजूदगी और विकास ज़रूरी है!

वेनेज़ुएला में ह्यूगो शावेज़ की सत्ता निश्चय ही कोई समाजवादी सत्ता नहीं है। शावेज़ का "समाजवाद" "पेट्रो डॉलर समाजवाद" है और अब शावेज़ के अनुयाइयों के बीच से भी एक नया नौकरशाहाना बुर्जुआ वर्ग उभर रहा है। लेकिन साम्राज्यवादियों और देशी बड़े पूँजीपतियों की मर्ज़ी के विपरीत, शावेज़ के सत्ता में अब तक टिके रहने का मूल कारण यह है कि नौकरशाही और मीडिया पर बुर्जुआ जकड़बन्दी के बावजूद, ग्रास रूट स्तर पर वहाँ तमाम जन संस्थाएँ वैकल्पिक सत्ता केन्द्र के रूप में मौजूद हैं और सेना के बड़े हिस्से के बीच शावेज़ का मज़बूत समर्थन-आधार है। वहाँ कमोबेश दोहरी सत्ता जैसी स्थिति बनी हुई है। सीमित सन्दर्भों में इस उदाहरण से नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए कुछ ज़रूरी सबक़ निकलते हैं। नेपाली क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास के लिए ज़रूरी है कि नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी अन्तरिम सरकार चलाते हुए भी सतत क्रान्तिकारी प्रचार एवं उद्वेलन की कार्रवाई के ज़रिये जन समुदाय को मौजूदा सत्ता-संरचना की सीमाओं से परिचित कराते रहें, जन पहलक़दमी को लगातार जागृत करके, पुराने मुक्त क्षेत्रों के आधार का इस्तेमाल करते हुए, ग्रासरूट स्तर पर तरह-तरह की जनसंस्थाओं के रूप में वैकल्पिक क्रान्तिकारी सत्ता केन्द्र विकसित करें और दोहरी सत्ता की स्थिति पैदा करने की दिशा में आगे बढ़ें। केवल तभी आने वाले दिनों में आम जनविद्रोह को प्रधान पहलू बनाते हुए राज्यसत्ता पर निर्णायक क़ब्ज़ा किया जा सकेगा और सर्वहारा जनवाद का यदि कोई रूप विकसित होना भी होगा तो वह इसी प्रक्रिया में विकसित होगा।

"कुछ विश्व ऐतिहासिक" करने की बेचैनी पिछड़े समाज की कूपमण्डूकता की उपज है!

बहुदलीय प्रणाली को नेपाली क्रान्ति के अभी तक के अनुभवों के आधार पर सर्वहारा जनवाद का 'ऑर्गन' घोषित कर देना निहायत अपरिपक्व निर्णय है और अधकचरे ढंग से अतीत के महान सामाजिक प्रयोगों के अनुभवों के समाहार को ख़ारिज़ करना है। वर्तमान मिली-जुली सरकार सर्वहारा अधिनायकत्व या जनता के जनवादी अधिनायकत्व के दौर की सरकार नहीं है। इसमें भागीदारी अल्पकालिक रणकौशल मात्र है। जब तक नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी जनता के जनवादी अधिनायकत्व के अन्तर्गत बहुदलीय व्यवस्था को चलाने का कोई सफल प्रयोग न कर लें, तब तक ऐसे किसी विचारधारात्मक इज़ाफ़े की बात ख़याली पुलाव पकाने के

(पेज 11 पर जारी)

नेपाली क्रान्ति : नये दौर की समस्याएँ और चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ और दिशाएँ

(पेज 9 से आगे)

समान है। दरअसल, कुछ "विश्व ऐतिहासिक" करने की बेचैनी ने.क.पा. (माओवादी) में कुछ ज़्यादा ही दीखती रही है। नेतृत्व में मौजूद राजनीतिक कैरियरवाद के साथ ही यह पिछड़े समाज की कूपमण्डूकता की देन है। प्राय: यह देखा जाता है कि पिछड़े समाजों में लोग "दुनिया की सबसे बड़ी", या "सबसे अनूठी" चीज़ों के अपने आसपास होने का दावा करते रहते हैं। 'प्रचण्ड पथ' का आविष्कार भी इसी बेचैनी की देन है, जिसकी आलोचना 'बिगुल' में पहले की जा चुकी है। नेपाली क्रान्ति को इक्कीसवीं शताब्दी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों का प्रस्थान बिन्दु बताना और आने वाले दिनों की क्रान्तियों के लिए राह दिखाने का दावा करना भी एक बचकानापन ही है। सामाजिक-आर्थिक संरचना के पिछड़ेपन की दृष्टि से, नेपाली क्रान्ति बीसवीं शताब्दी की सर्वहारा क्रान्तियों की ही अगली कड़ी है। यह गत शताब्दी का छूटा हुआ कार्यभार है जो वर्तमान शताब्दी में पूरा हो रहा है। हर देश की क्रान्तिकारी परिस्थितियों की अपनी कुछ मौलिकता-नवीनता होती है और हर क्रान्ति अपने आप में महान होती है। उसे बलपूर्वक महान सिद्ध करने के लिए 'ट्रेण्ड सेटर' और 'पाथ-ब्रेकिंग' बताना कूपमण्डूकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। सर्वहारा जनवाद की अब तक की अवधारणा में विकास और संविधान सभा के प्रयोग के अनूठेपन का दावा भी इसी कूपमण्डूकता की देन है। इसी कूपमण्डूकता के चलते ने.क.पा. (माओवादी) अतीत की महान क्रान्तियों के अनुभवों की तो बचकाने ढंग से कमियाँ निकालती है, लेकिन नववामपन्थी "मुक्त चिन्तन" उसे काफ़ी प्रभावित करता है। सर्वहारा क्रान्तियों के इतिहास की हास्यास्पद ढंग से छीछालेदर करने वाला रैशन किस्सून का लेख हो या समीर अमीन का लम्बा साक्षात्कार, पार्टी मुखपत्र में उन्हें छापने के बाद न तो कोई बहस चलायी जाती है, न ही कोई आलोचनात्मक टिप्पणी दी जाती है। इस क़िस्म की "ग़ैरपक्षधर वस्तुपरकता" पार्टी के विचारधारात्मक भटकाव का ही जीता-जागता प्रमाण है।

ने.क.पा. (माओवादी) के मुखपत्र में विचारधारात्मक भटकाव के नमूने

उल्लेखनीय यह भी है कि ने.क.पा. (माओवादी) ने एक वर्ष से भी अधिक समय के दौरान अपने मुखपत्र 'रेड स्टार' में सांस्कृतिक क्रान्ति, माओवाद, देङ के "बाज़ार समाजवाद" या पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बारे में कोई भी विचारधारात्मक सामग्री नहीं छापी है। चीन की आर्थिक-सामाजिक प्रगति दर्शाने वाले विवरण या चीनी पार्टी द्वारा नेपाली क्रान्ति की और 'प्रचण्ड की पार्टी' की प्रशंसा की ख़बरें, क्यूबा की क्रान्ति की वर्षगाँठ और प्रगति की ख़बरें ज़रूर देखने को मिलती हैं। किसी भी देश के साथ कूटनीतिक रिश्तों को विचारधारा से सर्वथा अलग करके देखना चाहिए। पार्टी मुखपत्र कूटनीति का नहीं बल्कि विचारधारात्मक प्रचार और संघर्ष का साधन होता है। 'रेड स्टार' में छपी एक रपट में कोरिया में समाजवाद की प्रगति की और "जुछे विचारधारा" की मुक्त कण्ठ से तारीफ़ की गयी है। कोरिया की कम्युनिस्ट पार्टी आज संशोधनवाद के रास्ते पर काफ़ी दूर निकल आयी है। उसके दस्तावेज़ों के अध्ययन से यह बात एकदम स्पष्ट है। लेकिन ने.क.पा. (माओवादी) यदि उसे अभी भी क्रान्तिकारी पार्टी मानती है तो यह या तो स्वयं उसका ही गम्भीर भटकाव है या फिर हद दर्जे की नासमझी है।

ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन के विरुद्ध संघर्ष और उसके सकारात्मक नतीजे

जैसा कि हमने ऊपर भी उल्लेख किया है, सकारात्मक बात यह है कि ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर दक्षिणपन्थी अवसरवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध केन्द्रीय कमेटी से लेकर नीचे तक तीखा संघर्ष सितम्बर 2008 से लगातार जारी था। हालाँकि दूसरा पक्ष भी कई मसलों पर स्पष्ट नहीं है और कहीं-कहीं खुद भी "वाम" या दक्षिण की विच्युति का शिकार है, लेकिन मुख्य पहलू की दृष्टि से उसकी अवस्थिति सही रही है।

पार्टी के भीतर दो लाइनों के संघर्ष का शिखर बिन्दु था, काठमाण्डू के निकट खारीपाती में 21 नवम्बर 2008 से शुरू हुआ छह दिवसीय राष्ट्रीय कन्वेंशन। इस कन्वेंशन में प्रचण्ड ने अपने दस्तावेज़ में प्रतिस्पर्द्धात्मक संघात्मक गणराज्य की लाइन रखी, जबकि किरण वैद्य ने लोक गणराज्य की लाइन रखी। लम्बी बहस के बाद 'लोक संघात्मक जनवादी राष्ट्रीय गणराज्य' के नारे पर आम सहमति बनी। संक्षेप में इसे 'लोक गणराज्य' ही कहने का निर्णय लिया गया। हालाँकि यह एक समझौता फ़ार्मूला था, लेकिन मुख्यत: यह दक्षिणपन्थी अवसरवादी लाइन की पराजय थी। प्रचण्ड के नेतृत्व वाला धड़ा संविधान सभा और सरकार में भागीदारी के ज़रिये प्रतिस्पर्द्धात्मक संघात्मक गणराज्य को मज़बूत बनाने पर बल दे रहा था, लेकिन कन्वेंशन ने आधिकारिक पार्टी लाइन यह तय की कि सड़क, संविधान सभा और सरकार – इन तीनों मोर्चों पर व्यापक संघर्ष करते हुए पार्टी लोक गणराज्य की स्थापना की दिशा में आगे बढ़ेगी, जिसमें सड़क का मोर्चा प्रमुख मोर्चा होगा। इस प्रकार संसदीय मार्ग पर जनसंघर्ष के मार्ग को प्रमुखता दी गयी। निश्चय ही, यह क्रान्तिकारी लाइन की एक जीत थी, लेकिन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, इस कन्वेंशन के बाद भी अध्यादेश द्वारा सेज की स्थापना और हड़ताल पर रोक जैसे कई ऐसे क़दम माओवादी नेतृत्व वाली सरकार ने उठाये, जिनमें दक्षिणपन्थी रुझान की मौजूदगी देखी जा सकती है।

खारीपाती राष्ट्रीय कन्वेंशन सकारात्मक दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम था। इसके तत्काल बाद ने.क.पा. (माओवादी) और ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) के बीच जारी एकता-प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ी। लोक गणराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष की लाइन पर एकता केन्द्र-मसाल की भी सहमति थी। मई-जून 2008 में **'बिगुल'** में प्रकाशित लेख में हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि एकता केन्द्र-मसाल माओवादियों के "वामपन्थी" और दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकावों के विरुद्ध पहले भी संघर्ष करता रहा था। इस तथ्य का उल्लेख भी किया गया है कि बुनियादी मतभेदों के हल होने के साथ ही दोनों पार्टियों के बीच एकता की प्रक्रिया संविधान सभा चुनावों के पहले ही शुरू हो चुकी थी, पर चुनाव और उसके बाद की परिस्थितियों में इसकी गति शिथिल पड़ गयी थी।

ने.क.पा. (माओवादी) और ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) के बीच एकता और क्रान्तिकारी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया की तेज़ गति

विगत 8-9 दिसम्बर को ने.क.पा. (माओवादी) ने एक और राष्ट्रीय सम्मेलन किया, जिसमें कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को एक पार्टी में एकताबद्ध करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए, एकता केन्द्र-मसाल के साथ एकता का प्रस्ताव पारित किया गया, लेकिन साथ ही उससे माओवाद को पार्टी के मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में स्वीकारने का आग्रह भी किया गया। ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) का दूसरा राष्ट्रीय कन्वेंशन 30-31 दिसम्बर 2008 और 1 जनवरी 2009 को सम्पन्न हुआ। कन्वेंशन ने सर्वसम्मति से राजनीतिक रिपोर्ट के साथ ही पार्टी एकता का प्रस्ताव भी पारित किया। उक्त कन्वेंशन के निर्णय के अनुसार 3 जनवरी को पार्टी के क़ानूनी मोर्चा – जनमोर्चा, नेपाल को भंग कर दिया गया और 6 जनवरी को पोलित ब्यूरो और केन्द्रीय कमेटी सहित पूरी पार्टी को सार्वजनिक करने की घोषणा एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में की गयी (पूरी पार्टी खुली करने के प्रश्न पर हम अपनी राय ऊपर दे चुके हैं)। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस में ने.क.पा. (माओवादी) के साथ एकता के निर्णय की घोषणा भी की गयी। उपरोक्त कन्वेंशन के पहले ही एकता केन्द्र ने ने.क.पा. (माओवादी) को सूचित कर दिया था कि वह पहले की साझा सहमति की इस अवस्थिति पर अभी भी क़ायम है कि नयी एकीकृत पार्टी के मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में माओवाद/माओ विचारधारा लिखा जाना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि पार्टी एकता के लिए एक तालमेल कमेटी विगत लगभग एक वर्ष से काम कर रही थी जिसमें ने.क.पा. (माओवादी) की ओर से प्रचण्ड, बाबूराम भट्टराई, किरण, बादल, कृष्णबहादुर महरा, पोस्टबहादुर बोगती और एकता केन्द्र-मसाल की ओर से प्रकाश, अमिक सेरचन, निनु चपागाईं, गिरिराज मणि पोखरेल, लीलामणि पोखरेल और भीम प्रसाद गौतम शामिल थे। इस तालमेल कमेटी की बैठक में एकीकृत पार्टी के लिए अन्तरिम राजनीतिक रिपोर्ट का मसौदा प्रचण्ड ने और आगामी राष्ट्रीय कांग्रेस तक नयी एकीकृत पार्टी के संचालन के लिए सांविधिक नियमावली का मसौदा प्रकाश ने तैयार किया। तालमेल कमेटी ने उन्हें अन्तिम रूप दिया और फिर दोनों पार्टियों की केन्द्रीय कमेटियों ने उन्हें पारित किया।

12 जनवरी 2009 को दोनों पार्टियों की केन्द्रीय कमेटियों की संयुक्त बैठक हुई जिसमें ने.क.पा. (माओवादी) की 106 सदस्यीय केन्द्रीय कमेटी और ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) की 31 सदस्यीय केन्द्रीय कमेटी को मिला देने के साथ ही एकीकरण की औपचारिक प्रक्रिया पूरी हो गयी। यह तय किया गया कि 137 सदस्यीय नयी केन्द्रीय कमेटी की सदस्य संख्या कुछ और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के साथ एकता के बाद बढ़ाकर 175 तक की जा सकती है। यह भी निर्णय लिया गया कि वर्तमान केन्द्रीय कमेटी ही आगामी राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए आर्गेनाइजिंग कमेटी का भी काम करेगी। नयी पार्टी का नाम एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) रखा गया, जिसका मार्गदर्शक सिद्धान्त मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद/माओ विचारधारा बनाया गया। प्रचण्ड पथ को मार्गदर्शक सिद्धान्त से हटा दिया गया लेकिन इस प्रश्न पर तथा माओवाद/माओ विचारधारा के प्रश्न पर पार्टी के भीतर आम सहमति पर पहुँचने की दृष्टि से आन्तरिक बहस का निर्णय लिया गया। प्रचण्ड को सर्वसम्मति से पार्टी-चेयरमैन चुना गया।

13 जनवरी को टुण्डीखेल, काठमाण्डू में हुई एक जनसभा में पार्टी एकता की सार्वजनिक घोषणा की गयी। 15 जनवरी को नयी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की दूसरी बैठक हुई।

पोलित ब्यूरो और सेक्रेटेरियट के गठन के बाद नयी पार्टी के नेतृत्व के बीच सांगठनिक ज़िम्मेदारियों के बँटवारे, नीचे की कमेटियों तक के एकीकरण तथा सभी जनसंगठनों के एकीकरण की प्रक्रिया जनवरी के पूरे महीने चलती रही और यह सिलसिला अभी भी जारी है।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के बीच एकता की यह प्रक्रिया अभी और आगे बढ़ने वाली है। इस क्रम में अगली एकता नवराज शर्मा के नेतृत्व वाले ने.क.पा. (मा-ले, क्रान्तिकारी) से होनी है। यह सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली संशोधनवादी पार्टी ने.क.पा. (मा-ले) से अलग होकर क्रान्तिकारी अवस्थिति अपनाने वाला एक संगठन है, जो ने.क.पा. (माओवादी) के साथ एकता का निर्णय पहले ही ले चुका था। अब यह एकता भी जल्दी ही सम्पन्न हो जायेगी।

एक दूसरे महत्त्वपूर्ण कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन ने.क.पा. (एकीकृत) के साथ भी एकता की कोशिशें जारी हैं। उक्त संगठन के नेतृत्व के एक सदस्य नवराज सुबेदी इस बात के लिए प्रयासरत हैं कि पूरा संगठन एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) के साथ एकता कर ले। यदि ऐसा सम्भव नहीं हो सका तो भी नवराज सुबेदी कुछ अन्य लोगों के साथ नयी एकीकृत पार्टी में शामिल हो जायेंगे। जो भी होना होगा, वह मार्च तक हो जायेगा।

कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की एकता की यह जारी प्रक्रिया नेपाली जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप है। नेपाली क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास के लिए ने.क.पा. (माओवादी) के भीतर के दो लाइनों के संघर्ष में दक्षिणपन्थी भटकाव के फ़ौरी तौर पर पीछे हट जाने या कमज़ोर पड़ जाने की घटना और एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) के गठन की घटना – इन दोनों का अत्यधिक महत्त्व है। इस समय नेपाल में दक्षिण और वाम के शिविरों में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया काफ़ी तेज़ है। एक माह के भीतर ने.क.पा. (एमाले) भी अपनी राष्ट्रीय कांग्रेस करने वाली है। यह पार्टी अब एकदम खुले तौर पर सामाजिक जनवादी रंग में रँग चुकी है। सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली ने.क.पा. (मा-ले) व्यवहार में नेपाली कांग्रेस के निकट है। नेपाली कांग्रेस भूतपूर्व राजतन्त्रवादी पार्टियों तक को साथ लेकर तथाकथित जनवादी मोर्चा संगठित करने का नारा दे रही है। एकीकृत ने.क.पा. (माओवादी) सभी राष्ट्रीय और गणराज्यवादी शक्तियों के साथ संयुक्त मोर्चे का नारा दे रही है। भविष्य में बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों की क़तारों से छिटककर कुछ लोग ऐसे मोर्चे में शामिल हो सकते हैं। नेपाली कांग्रेस, एमाले, मधेसी जनाधिकार फ़ोरम – इन सभी पार्टियों में आन्तरिक अन्तरविरोध गहरा रहे हैं।

ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख संविधान-निर्माण और रैडिकल भूमि-सुधार जैसे प्रश्नों पर इस ध्रुवीकरण का तीखा होना निश्चित है। ऐसी स्थिति में, ज़ाहिर है कि वर्ग-संघर्ष का मुख्य मंच संविधान सभा और सरकार नहीं, बल्कि सड़क ही बनेगा। सड़कों पर उठने वाला जनान्दोलन का नया ज्वार संसद के भीतर भी प्रतिक्रियावादी ताक़तों पर दबाव बनायेगा। नेपाल की जनवादी क्रान्ति किन चढ़ावों-उतारों से होकर आगे बढ़ेगी, इसका ठीक-ठीक पूर्वानुमान तो अभी से नहीं लगाया जा सकता। लेकिन इतना विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि क्रान्ति के हरावल दस्ते की एकजुटता बनी रही और वह दक्षिणपन्थी और "वामपन्थी" अवसरवादी विचलनों पर दो लाइनों के संघर्ष के ज़रिये विजय हासिल करता रहा तो कठिनतम वस्तुगत परिस्थितियाँ भी क्रान्ति की अग्रगति को कुछ समय के लिए बाधित भले ही कर दें, लेकिन उसका गला नहीं घोंटा जा सकता। विचारधारात्मक रूप से दृढ़, एकीकृत और जनाकांक्षाओं की कसौटी पर खरी उतरने वाली पार्टी के नेतृत्व में क्रान्ति की विजय काफ़ी हद तक सुनिश्चित होती है, चाहे उसका रास्ता जितना भी लम्बा और कठिन क्यों न हो!

(3 फ़रवरी, 2009)

●

नताशा– एक महिला बोल्शेविक संगठनकर्ता

एक संक्षिप्त जीवनी (दूसरी क़िश्त)

एल. काताशेवा

रूस की अक्टूबर क्रान्ति के लिए मज़दूरों को संगठित, शिक्षित और प्रशिक्षित करने के लिए हज़ारों बोल्शेविक कार्यकर्ताओं ने बरसों तक बेहद कठिन हालात में, ज़बर्दस्त क़ुर्बानियों से भरा जीवन जीते हुए काम किया। उनमें बहुत बड़ी संख्या में महिला बोल्शेविक कार्यकर्ता भी थीं। ऐसी ही एक बोल्शेविक मज़दूर संगठनकर्ता थीं नताशा समोइलोवा जो आख़िरी साँस तक मज़दूरों के बीच काम करती रहीं। इस अंक से हम 'बिगुल' के पाठकों के लिए उनकी एक संक्षिप्त जीवनी का धारावाहिक प्रकाशन कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि आम मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं को इससे बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। – सम्पादक

(पिछले अंक से जारी)

ओदेस्सा छोड़ने के नताशा के फ़ैसले ने उन्हें काफ़ी तकलीफ़ दी। मज़दूर उनके वहाँ से चले जाने का ग़लत अर्थ न निकालें, इसके लिए उन्होंने ओदेस्सा के सामाजिक-जनवादी संगठन के ग़लत रणकौशलों पर स्पष्ट और मुखर बयान दिया। उनका पत्र इस प्रकार था :

"मैं ओदेस्सा कमेटी के सदस्यों (बोल्शेविकों) के समक्ष बयान देती हूँ कि निम्न कारणों से स्थानीय संयुक्त संगठन में बने रहना मुझे सम्भव नहीं जान पड़ता :

"पहली बात तो यह कि रणकौशलात्मक सवालों पर बोल्शेविकों और मेंशेविकों के बीच की असहमतियाँ अभी भी इतनी गम्भीर हैं कि इस समय एकता करना समझौते के रास्ते पर क़दम बढ़ाना है और एकमात्र सच्चे क्रान्तिकारी रणकौशलों से किनारा करने के समान है, जिसे बोल्शेविक अभी तक अपनाते आये हैं, और जिसने उन्हें वामपन्थी और सही अर्थों में आरएसडीएलपी (रूसी सामाजिक जनवादी पार्टी) का क्रान्तिकारी धड़ा बनाये रखा है।

"महत्त्वपूर्ण मसलों पर असहमत होते हुए एकता करना सिर्फ़ यान्त्रिक ही होगा और स्थानीय परिस्थितियों में व्यावहारिक तौर पर इसका नतीजा बोल्शेविकों पर मेंशेविकों का वर्चस्व होगा, जबकि, मौजूदा हालात में वर्चस्व के लिए सैद्धान्तिक लड़ाई निश्चित रूप से निरर्थक होगी और सिर्फ़ नये मतभेद, टकराव और नये विभाजन का कारण बनेगी। यह एकता काम को और भी असंगठित करेगी और चीज़ों को सुधारने में कोई मदद नहीं करेगी। मैं यह भी मानती हूँ कि यहाँ जो एकता हुई है वह पार्टी अनुशासन की सभी धारणाओं का बुनियादी तौर पर उल्लंघन करती है, जिसका बोल्शेविकों ने मेंशेविकों की पार्टी विरोधी और विघटनकारी प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ अपने संघर्ष में हमेशा ही ज़ोरदार बचाव किया है।

"मैं बाहरी ज़िलों की एक बैठक में बोलने वालों में से उस एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूँ जिसने घोषणा की थी कि 'हमें तीसरी कांग्रेस की काग़ज़ी घोषणा पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है', मुझे लगता है कि स्थानीय संगठन को पूरी पार्टी (यानी बोल्शेविकों) की सहमति के बिना मेंशेविकों के साथ एकता जैसा महत्त्वपूर्ण फ़ैसला लेने का कोई अधिकार नहीं है, और इस मामले में एकमात्र उचित और विश्वसनीय रास्ता पार्टी के तमाम कार्यकर्ताओं की चौथी कांग्रेस बुलाना है।

"एकता के रास्ते पर समझ में न आने वाली हड़बड़ी से आगे बढ़ रहे ओदेस्सा के संगठन ने केन्द्रीय कमेटी या बोल्शेविकों की दूसरी कमेटियों को सूचित करना भी ज़रूरी नहीं समझा। उसने सेण्ट पीटर्सबर्ग और मास्को की कमेटियों के उस उदाहरण की भी सिरे से अवहेलना की जिन्होंने सिर्फ़ संघीय लाइन पर ही एकता को सम्भव माना था।

"इस तरह स्थानीय संगठन को स्थापित केन्द्रों और पार्टी की सीमाओं से बाहर रखकर, एकता ने पार्टी सम्बन्धों में और भी अफ़रातफ़री पैदा कर दी है, ख़ासकर तब जबकि हम मानकर चलें कि चौथी कांग्रेस ने पार्टी के दोनों धड़ों के बीच सिर्फ़ संघीय आधार पर ही एकता का निर्णय किया था। तब ओदेस्सा का संगठन, एकता करने वाले संगठन के तौर पर, किसी भी पार्टी से बाहर होगा।

"संक्षेप में मैं कहूँगी कि जिन लोगों के नेतृत्व में मैंने कई महीने काम किया है, अब तक जिन्हें मैं गम्भीर राजनीतिक सिद्धान्तों वाले भरोसेमन्द नेता मानती थी, वे हालात का सामना करने में अक्षम साबित हुए हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षण में जब बाहरी ज़िलों के अपेक्षाकृत कम विश्वसनीय हिस्से एकता का रुझान दर्शा रहे थे, उन ढुलमुल कॉमरेडों को प्रभावित करने के नज़रिये से बातचीत करने के बजाय वे बहाव के साथ बह गये और अपनी असंगति से उन सिद्धान्तों को नीचा दिखाया, पहले मैं उन्हें, जिनका पैरोकार मानती थी।

"वही दिग्गज जो हफ़्ते भर पहले तक एकता की बात भी नहीं सुनना चाहते थे, किसी जादू के ज़ोर से उन्होंने एकता का पक्ष लेना शुरू कर दिया, और यह कहते हुए उसका औचित्य सिद्ध करने लगे कि जब बाहरी ज़िले एकता चाहते हैं तो संघ का आग्रह करना अटपटा जान पड़ता है। यह सच है कि उनमें से कुछ ने दावा किया कि सिद्धान्ततः वे संघ के पक्ष में हैं, लेकिन बाहरी ज़िलों की बैठकों में उन्होंने एकता के सवाल का कोई विरोध नहीं किया, और हमारे नेताओं ने पार्टी में हुए पिछले विभाजन के बारे में लोकरंजक शब्दावली, जैसेकि उसे 'सिर्फ़ नेताओं ने उकसाया था', कि वह एकता में बाधा डालने की इच्छा रखने वाले 'मुट्ठीभर' बुद्धिजीवियों का काम था, का जवाब सिर्फ़ शर्मनाक और आपराधिक चुप्पी से दिया।

"इस तरह की सैद्धान्तिक अस्थिरता ने स्थानीय नेतृत्व में मेरा सारा विश्वास हिलाकर रख दिया और उपर्युक्त कारणों के साथ मिलकर इसने मुझे ओदेस्सा का संगठन छोड़ने पर विवश कर दिया।"

लेकिन "प्रचारक नताशा" की यह आपत्ति अपना लक्ष्य पूरा न कर सकी। वह डाकपेटी में पत्र डाल ही रही थीं कि उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। उन्हें रोस्तोव जेल में डाल दिया गया और उनका पत्र ज़ारशाही के एजेण्टों के हाथ लग गया (1917 की क्रान्ति ने ओखराना [राजनीतिक पुलिस] के धूल भरे अभिलेखागार से निकालकर इसे सार्वजनिक किया)।

एक बार फिर उन्हें महीनों तक जेल में रहना पड़ा और फिर उन्हें निर्वासित कर दिया गया – इस बार बिना कोई विकल्प दिये, पुलिस की निगरानी में उन्हें उत्तरी रूस के वोलोग्दा में भेज दिया गया।

लेकिन क्रान्ति अभी ख़त्म नहीं हुई थी। नताशा फिर से काम करने के लिए बेचैन थीं और जल्दी ही वह वोलोग्दा की पुलिस की निगरानी से निकल भागने में कामयाब रहीं।

> **सर्वहारा की अन्तिम जीत में गहन आस्था की ज्वाला उनमें सदा जलती रहती थी। उनमें काम करने की ज़बरदस्त क्षमता थी और वह हमेशा ऊर्जा से लबरेज़ रहती थीं और इसी के साथ असाधारण शालीनता उनकी अनूठी पहचान थी।**

वह ग़ैरक़ानूनी ढंग से मास्को जाकर रहने लगीं। बेशक इसके साथ तमाम क़िस्म की भौतिक और क़ानूनी परेशानियाँ जुड़ी हुई थीं।

इस अवधि की नताशा की गतिविधियों का ब्यौरा कॉमरेड बोब्रोव्स्काया इस तरह देती हैं :

"क्षेत्रीय कमेटी की एक सदस्य कांकोर्दिया समोइलोवा थीं जिन्हें हम 'नताशा' के नाम से पुकारते थे। अभी कुछ ही समय पहले उनकी मृत्यु हुई है। उत्कट क्रान्तिकारी नताशा एक दिन मितिषी के जंगलों में जनसभा में जुझारू भाषण देतीं, दूसरे दिन गोलुत्विनो में सांगठनिक बैठक बुलातीं, उसके अगले दिन कोलोमैन वर्क्स के प्रतिनिधियों के साथ सम्मेलन में बैठतीं, वहाँ से वह श्चेल्कोवो, कुन्त्सेवो, पुश्किनो जातीं; हर जगह उनकी व्यग्रता से प्रतीक्षा की जाती थी, हर जगह वह सोये हुए विचारों को जगाती थीं, हर जगह वह बेचैन इच्छाओं को झकझोरती थीं, मास्को के उपनगरों की बिखरी हुई सर्वहारा जनता को जो 1905 की हार से धीरे-धीरे उबर रही थी, मज़बूत सांगठनिक डोर से बाँधती थीं। अपना दौरा पूरा करके भूखी और थकी-माँदी नताशा मास्को लौटती थीं और उनकी रिपोर्टें मेहनतकश जनता के जीवन और उसकी ऊष्मा से ओतप्रोत होती थीं... सुरक्षा की दृष्टि से मैंने और नताशा ने एक-दूसरे से दूर ही रहने का समझौता किया, हालाँकि यह आसान नहीं था, क्योंकि हम बहुत गहरी दोस्त थीं, और उनकी मृत्यु तक हमारी गहरी दोस्ती क़ायम रही।

"एक रात बारह बजे वह मेरे आवास पर आयीं और बोलीं कि वह अपना समझौता तोड़ने पर विवश हैं, क्योंकि जिन तीन पार्टी हमदर्दों के यहाँ उन्होंने ठहरने का अनुरोध किया उन सभी ने विनम्रतापूर्वक इंकार कर दिया था और वे सड़क पर आ गयी थीं। उस रात हम दोनों बहुत कम सोयीं लेकिन हमने हमदर्दों और ख़ुद अपना ख़ूब मज़ाक़ बनाया। और कुछ किया भी नहीं जा सकता था, क्योंकि उस सँकरी और टूटी चारपाई पर हम दोनों का सो पाना मुमकिन नहीं था।"

यह 1906 की बात है जब नताशा मास्को के ज़िला पार्टी संगठन में काम कर रही थीं। लेकिन वह वहाँ ज़्यादा देर तक काम नहीं कर सकीं क्योंकि पुलिस के जासूसों ने परछाईं की तरह उनका पीछा करना शुरू कर दिया था। उन्हें लग गया कि यह मास्को में उनके पार्टी कार्य का अन्त था, और गिरफ़्तारी और जेल से बचने के लिए उन्हें कहीं और जाना होगा।

उन्होंने बेसिन में लुगान्स्क का क़स्बा चुना। 1906 के आख़िरी महीनों में संयुक्त पार्टी में गहन गुटबाज़ी का समय था (आरएसडीएलपी की एकता कांग्रेस 1906 में स्टॉकहोम में हुई थी)।

लुगान्स्क दोनेत्स इलाक़े के "मेंशेविक समुद्र" में एक छोटा बोल्शेविक द्वीप था। दूसरी दूमा के चुनाव क़रीब आ रहे थे और वहाँ बोल्शेविक क़तारों को सुदृढ़ करना ज़रूरी था, न सिर्फ़ लुगान्स्क को बनाये रखने के लिए और वहाँ सही ढंग से चुनाव प्रचार अभियान चलाने के लिए, बल्कि अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए भी। प्रोफ़ेसर पिंकेविच, जो उन दिनों लुगान्स्क में काम कर रहे थे, उस समय का इस प्रकार वर्णन करते हैं :

"हम दिसम्बर के मध्य में लुगान्स्क पहुँचे और निर्धारित जगह पर गये, कॉमरेड पैलोव्स्की (एक छोटे स्थानीय अख़बार 'दोनेत्स्की कोलोकोल' के ठिकाने पर, और कुछ घण्टों के बाद हम दो पेशेवर क्रान्तिकारियों, कामरेडों अन्तोन और नताशा के साथ बात कर रहे थे।

"मुझे दो कमरों का छोटा और साधारण-सा अपार्टमेण्ट याद आता है। मुझे नताशा का सजीव, गुलाबी और प्रफुल्लित चेहरा, और अन्तोन (ए.ए. समोइलोव – नताशा के पति) का बड़ा काला और घुँघराले बालों वाला सिर याद आता है। मुझे दोनों की याद है, ख़ुश और जीवन्त, पार्टी के रणकौशलों के बारे में हम पर सवालों की बौछार करते हुए और इस या उस पार्टी कॉमरेड के बारे में पूछते हुए। उनके बहुत-से सवाल थे – दूमा के लिए चुनाव प्रचार, चुनावी समझौतों के प्रश्न पर, लन्दन की पार्टी कांग्रेस, जारी होने वाले नारों, सेण्ट पीटर्सबर्ग में चलने वाली गुटबाज़ी, इत्यादि मसलों पर।

"बोल्शेविक कार्यकर्ताओं की सक्रिय भागीदारी सहित असाधारण प्रसन्नता और जीवन्तता के साथ जमकर काम किया गया। दुर्भाग्य से मुझे उन सबके नाम याद नहीं हैं। कमेटियों ने काफ़ी सक्रियता दिखायी। कई बार हार्टमैन फ़ैक्टरी में ही या उसके गेट पर, रेलवे की कार्यशालाओं में, कारतूस कारख़ाने पर सभाएँ आयोजित हुईं। लेकिन मुख्य ठिकाना बेशक हार्टमैन फ़ैक्टरी ही थी, जहाँ सभी कॉमरेडों के मज़बूत सम्पर्क थे और वे बेहद लोकप्रिय थे, ख़ासकर वोरोशिलोव और फ़्रिडकिन।

"इस काम में भी नताशा लाजवाब थीं। उस समय वह बड़ी सभाओं में नहीं बोलती थीं – यह यूरिन का और मेरा दायित्व था, लेकिन वह कमेटी की जान और उसकी आत्मा थीं। बेहतरीन संगठनकर्ता, क्रान्ति के मक़सद के प्रति पूरी तरह निष्ठावान, मुखर और स्पष्टवादी, एक असाधारण, उच्च विचारों वाली और नेक इंसान थीं। जो भी उनसे मिलता था उन्हें प्यार करने लगता था। वह अन्तोन की देखभाल करती थीं जो हम लोगों को हमेशा एक ऐसे बड़े बच्चे की तरह प्रतीत होता था जो मानो इस दुनिया के लिए न बना हो। वह हमारी देखभाल करती थीं, एक अध्ययन मण्डल चलाती थीं, और तकनीकी कार्यों का निर्देशन करती थीं, पूरे दिन सांगठनिक गतिविधियों में दौड़-भाग करती थीं और कभी शिकायत नहीं करती थीं। सर्वहारा की अन्तिम जीत में गहन आस्था की ज्वाला उनमें सदा जलती रहती थी। उनमें काम करने की ज़बरदस्त क्षमता थी और वह हमेशा ऊर्जा से लबरेज़ रहती थीं और इसी के साथ असाधारण शालीनता उनकी अनूठी पहचान थी।

"जब पार्टी कांग्रेस के लिए चुनाव का सवाल उठा (फ़रवरी 1907 में) और जब उम्मीदवार के रूप में पहली बार उनका नाम सामने आया, तो उन्होंने यह कहते हुए एकदम इंकार कर दिया कि 'मैक्सिम या यूरिन या मज़दूरों में से किसी को जैसेकि वोलोद्या को, जाना चाहिए।' ज़ारशाही की सशस्त्र पुलिस ने यूरिन और मुझे गिरफ़्तार करके इस समस्या का समाधान कर दिया और लुगान्स्क समूह ने नताशा को वोलोद्या (वोरोशिलोव) के साथ कांग्रेस में भेजा।"

लन्दन की कांग्रेस में उन्होंने, 1902-1903 में जब वह पेरिस में रहती थीं उसके बाद, पहली बार लेनिन को फिर से देखा। अब वह बोल्शेविकों के नेता थे। उन्होंने लेनिन के विस्मयकारी भाषणों को सुना जिनमें उन्होंने मेंशेविक केन्द्रीय कमेटी की राजनीतिक लाइन की ध्वस्त कर देने वाली आलोचना की। ये मेंशेविक अब इस क़दर नीचे गिर गये थे कि यह नारा देने लगे थे कि मज़दूरों को कैडेट (संवैधानिक-जनवादी-उदार बुर्जुआओं की पार्टी) सरकार का समर्थन करना चाहिए, और यहाँ तक कि मुआवज़ा दिये बिना ज़मींदारों की ज़मीन पर क़ब्ज़ा करने की माँग अस्वीकार करने लगे थे। उन्होंने लेनिन का वह भाषण सुना जिसमें नताशा ने यह सिद्धान्त दिया कि रूस में क्रान्ति की विजय सर्वहारा और किसानों के जनवादी अधिनायकत्व के रूप में होगी और यह कि सर्वहारा वर्ग क्रान्ति का नेता है। जैसाकि हम जानते हैं, नताशा हमारी पार्टी की बड़ी सिद्धान्तकार या रणनीतिकार नहीं थीं। वह व्यवहार के प्रति समर्पित थीं, और इसमें दो राय नहीं कि पाँचवीं कांग्रेस ने उन पर ज़बरदस्त प्रभाव डाला, बोल्शेविज़्म की उनकी समझ को और गहरा किया और बाक़ी की पूरी ज़िन्दगी के लिए उन्हें एक अटल लेनिनवादी योद्धा बना दिया।

कांग्रेस में बोल्शेविकों की जीत हुई और नताशा जिस उत्साह से भरकर रूस वापस लौटीं उसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है। वह हार्टमैन फ़ैक्टरी के मज़दूरों के पास लुगान्स्क वापस लौटने को उत्सुक थीं। वह प्रतिनिधि की हैसियत से उन्हें अपनी रिपोर्ट देने और क्रान्ति के उस काम को और भी उत्साह से आगे बढ़ाने के लिए उत्सुक थीं जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर रखा था। इस बीच पुलिस विभाग सावधानी के साथ कांग्रेस की निगरानी कर रहा था। उसके विदेशी एजेंट साये की तरह प्रतिनिधियों के पीछे लगे थे और उनके असली नाम जानने और रूस लौटते समय सीमा पर उन्हें गिरफ़्तार करने का वे हरसम्भव प्रयास कर रहे थे। बहरहाल, नताशा सुरक्षित रूप से सीमा पार कर गयीं और अपनी निशानदेही छिपाने के लिए कुछ दिन खार्कोव में रुकी रहीं।

•

(अगले अंक में जारी)

पंजीयन संख्या 71980/99 | डाक पंजीयन संख्या SSP/LW-NP/399/2009-11 | प्रेषक डाकघर - महानगर | प्रेषण तिथि- माह की 13, 14, 15 तारीख

चीन के नकली कम्युनिस्टों को सता रहा है "दुश्मनों" यानी मेहनतकशों का डर

वे डरते हैं
किस चीज़ से डरते हैं वे
तमाम धन-दौलत
गोला-बारूद-पुलिस-फ़ौज के बावजूद?
वे डरते हैं
कि एक दिन
निहत्थे और ग़रीब लोग
उनसे डरना बन्द कर देंगे।

चीन के मौजूदा हालात पर गोरख पाण्डेय की कविता 'उनका डर' की ये पंक्तियाँ आज एकदम सटीक बैठती हैं। दरअसल, चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद से ही ग़रीबी, बेरोज़गारी, भुखमरी फैल रही थी, अब विश्व आर्थिक मन्दी ने इस संकट को और गहरा दिया है, जिससे चीन में तथाकथित आर्थिक विकास की दर भी कम हो गयी है और छँटनी, तालाबन्दी के चलते बेरोज़गारों की फ़ौज में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। यही नहीं, **समाजवादी काल में चीन के जिस मेहनतकश अवाम को समाज का निर्माता माना जाता था, आज वही अवाम पूँजीपतियों की चाकरी बजाने वाली नक़ली कम्युनिस्ट सरकार को 'दुश्मन' लगने लगा है।** माओ के देहान्त के बाद चीन की सत्ता पर क़ाबिज़ लाल रंग में रँगे भेड़िये अब इस चिन्ता में डूबे हैं कि जनता के गुस्से से कैसे बचा जाये। पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाले अख़बार, समाचार एजेंसियाँ और तरह-तरह के विशेषज्ञ लगातार सामाजिक असन्तोष की चेतावनी दे रहे हैं। हालत यह है कि जनता के विरोध को कुचलने के लिए सेना और पुलिस को चाक-चौबन्द रहने के आदेश दे दिये गये हैं।

मन्दी का सबसे ज़्यादा असर मज़दूर-किसानों पर

आज चीन की अर्थव्यवस्था दुनिया की अर्थव्यवस्था के साथ नत्थी है और दुनिया की अर्थव्यवस्था में किसी भी परिवर्तन का असर चीन पर पहले से कहीं अधिक होता है। यही कारण है कि पिछले वर्ष शुरू हुई आर्थिक मन्दी के कारण मुख्यत: निर्यात आधारित चीनी अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। मौजूदा समय में **चीन के हर चार में से एक मज़दूर के पास काम नहीं है। चीन में गाँव-शहर के बीच आमदनी का अन्तर दुनिया में सबसे अधिक है।**

निर्यात आधारित कारख़ानों में मज़दूरों को पहले ही कम मज़दूरी दी जाती थी और उनके जीवन की स्थितियाँ जानवरों से भी बदतर थीं, अब ऐसे कई छोटे-छोटे कारख़ाने बन्द कर दिये गये हैं और देहात से शहरों में मज़दूरी करने आये लाखों मज़दूरों को काम से निकाल दिया गया है। सेण्ट्रल रूरल वर्क लीडिंग ग्रुप के निदेशक चेन ज़ाइवेन ने पिछले सप्ताह एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में बताया कि बीते वर्ष लगभग 2.6 करोड़ प्रवासी मज़दूरों की छँटनी की गयी, जिन्हें बाद में काम ही नहीं मिला। हालत यह है कि देहात के क्षेत्रों से शहरों की ओर काम की तलाश में आने वाले मज़दूरों को इस वर्ष शहर न आने की हिदायत दी गयी है, जिसका कारण काम की मन्दी बताया गया है। जबकि 65 प्रतिशत ग्रामीण आबादी इन्हीं प्रवासी मज़दूरों की कमाई पर आश्रित है।

सिंगहुआ विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर यू किआओ के अनुसार इस वर्ष शहरी क्षेत्रों में काम करने वाले और 5 करोड़ प्रवासी मज़दूर बेरोज़गार हो सकते हैं। इसमें दसियों लाख बेरोज़गार शहरी मज़दूरों को शामिल नहीं किया गया है। वास्तव में, हर साल लगभग दो करोड़ मज़दूर चीन की श्रम मण्डी में अपना सस्ता श्रम बेचने के लिए दाख़िल होते हैं। प्रोफ़ेसर यू के अनुसार चीन सरकार द्वारा बड़े उद्योगों को दिये गये 4 खरब युआन के राहत पैकेज से जीडीपी भले ही थोड़ा बढ़ जाये, लेकिन छोटे उद्योगों को उससे कोई फ़ायदा नहीं होगा, जिनमें चीन के अधिकांश मज़दूर काम करते हैं।

चीन के गुआंगदोंग प्रान्त में पिछले वर्ष अक्टूबर तक 15,661 कम्पनियों पर ताला लटक चुका था। यह प्रान्त एक प्रमुख निर्यात केन्द्र है और यहाँ से चीन के कुल निर्यात के एक तिहाई हिस्से की आपूर्ति की जाती है। इस क्षेत्र द्वारा 2007 में की जाने वाली लगभग 23 प्रतिशत आपूर्ति 2008 में घटकर मात्र 5.6 प्रतिशत रह गयी। इसका सबसे बुरा असर मज़दूरों पर पड़ा।

प्रोफ़ेसर यू के अनुसार निर्माण क्षेत्र में भी 30 से 40 प्रतिशत की गिरावट आयी है, जिससे एक करोड़ मज़दूरों की छँटनी कर दी गयी है। आने वाले समय में निर्माण क्षेत्र में और गिरावट की आशंका है जिसके कारण करोड़ों प्रवासी मज़दूर बेरोज़गारों की बढ़ती फ़ौज में शामिल हो जायेंगे।

ये प्रवासी मज़दूर दर-दर भटकने को मजबूर हैं, क्योंकि संशोधनवादियों द्वारा "सुधारों" की शुरुआत करने के बाद से चीन की सामूहिक खेती की व्यवस्था तहस-नहस हो चुकी है और जिनके पास ज़मीन के टुकड़े बचे भी हैं उनके पास बीज-खाद-कीटनाशकों और खेती के औज़ारों आदि के लिए पैसे नहीं हैं। अब चीन के देहात की 65 फ़ीसदी आबादी शहरों में काम करने वाले प्रवासी मज़दूरों पर निर्भर है।

शहरों में भी मेहनतकशों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है, चीन की सामाजिक विज्ञान अकादमी के अनुसार शहरों की लगभग 14 करोड़ आबादी बेरोज़गार है और इस वर्ष इस संख्या में बेतहाशा बढ़ोत्तरी होने की आशंका है। मन्दी के चलते चाहे शहरी मज़दूर हों या गाँव से शहर काम करने आये मज़दूर, सभी को हर समय काम छूटने का डर बना रहता है। इस साल लगभग 7.6 करोड़ कॉलेज स्नातक काम की तलाश में निकलेंगे, जिसमें एक करोड़ पिछले वर्ष कॉलेज से निकले छात्र शामिल हैं, जिन्हें बीते वर्ष काम नहीं मिला था। और इनमें से अधिकांश को अमीरों के घरेलू कामों या बच्चों की देखभाल आदि करके अपना गुज़ारा करना पड़ेगा।

जगह जगह हो रहे हैं पुलिस-प्रशासन-मालिकों और जनता में टकराव

पिछले कुछ महीनों में चीन की मेहनतकश जनता और पुलिस प्रशासन में कई बार टकराव हुआ है। कुछ दिन पहले टैक्सी ड्राइवरों तक की हड़ताल हुई और प्रदर्शन हुए जिनसे दस शहर प्रभावित हुए थे। गुआङदाङ प्रान्त के श्रम विभाग के अनुसार वहाँ बीते वर्ष औद्योगिक झगड़ों की संख्या में दोगुना इज़ाफ़ा हुआ है। चीन में 2006 में ही लगभग 90 हज़ार बड़ी हड़तालें और शहरी तथा ग्रामीण प्रदर्शन हुए थे, इसके बाद चीन की सरकार ने यह आँकड़े प्रकाशित करना ही बन्द कर दिया, लेकिन अनुमान है कि बीते वर्ष इस संख्या में चार गुना की बढ़ोत्तरी हुई होगी।

पिछले वर्ष जून में, चीन की वेंगान काउण्टी में सरकार से जुड़े लोगों द्वारा एक लड़की के बलात्कार और हत्या के बाद वहाँ लगभग 50,000 लोगों की भीड़ ने "कम्युनिस्ट" पार्टी के दफ़्तरों और पुलिस स्टेशन में आग लगा दी। दरअसल, यह घटना जनता के दबे हुए गुस्से के फूट पड़ने का कारण बनी थी।

चीन की सामाजिक विज्ञान अकादमी के शोधकर्ता शान ग्वाङाई के 15 जनवरी को एक अख़बार में बयान दिया कि मन्दी से सामाजिक समस्याओं में इज़ाफ़ा हो सकता है। शान का कहना था कि सरकारी शोधकर्ता पिछले कई वर्षों से बड़े धरना-प्रदर्शनों और हड़तालों आदि के रुझान पर नज़र रखे हुए हैं और शोधकर्ताओं में इस बात पर सहमति है कि आने वाले समय में प्रदर्शनों की संख्या बढ़ेगी और वे पिछले प्रदर्शनों से ज़्यादा संगठित होंगे।

शान के अनुसार हुनान और हुबेई प्रान्तों के मामलों के आधिकारिक अध्ययनों से पता चलता है कि वहाँ के मज़दूर और किसान जनता को गोलबन्द करने और प्रचार की रणनीति अपनाने में सक्षम है। यानी कुल-मिलाकर वे संगठित तरीक़े से विरोध कर सकते हैं। उनका कहना है कि पिछले कुछ सालों में मज़दूरों-किसानों के अधिकारों और जीवन स्थिति की बेहतरी के लिए आवाज़ उठाने वाले कई "गुमनाम" संगठन बन गये हैं।

हाल ही में आउटलुक साप्ताहिक पत्रिका में कहा गया है कि सरकार और पूँजी के गँठजोड़ ने इन सामाजिक टकरावों को और बढ़ाया है। पत्रिका में सेण्ट्रल पार्टी स्कूल के हवाले से कहा गया है कि **निचले स्तर के अधिकारी इन टकरावों को "दुश्मनों" और उनके बीच संघर्ष का नाम देते हैं।**

सरकारी भोंपू और पूँजीपतियों के भाड़े के टट्टू दे रहे हैं सामाजिक अशान्ति की चेतावनी

बेरोज़गारों की बढ़ती फ़ौज और धरना-प्रदर्शनों की बढ़ती संख्या से चीन का शासक वर्ग डरा हुआ है। पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाले अख़बारों और तरह-तरह की अकादमियों के विशेषज्ञ अब सामाजिक अशान्ति के बढ़ते ख़तरे की चेतावनी दे रहे हैं। सत्ता पर क़ाबिज़ नक़ली कम्युनिस्टों के अख़बार पीपुल्स डेली के आर्थिक विभाग के उप प्रमुख शी मिंगशेन ने चेतावनी दी है कि आने वाले समय में बेरोज़गारी की रोकथाम नहीं की गयी तो यह एक बड़ी समस्या को जन्म देगी। बीजिंग के रेनमिन विश्वविद्यालय के झाओ झिओझेंग की हिदायत है कि करोड़ों छात्रों को काम नहीं मिल रहा है और करोड़ों प्रवासी मज़दूरों की छँटनी कर दी गयी है, जबकि देहात में उनके पास खेती योग्य ज़मीन नहीं या अन्य बीज-कीटनाशक-कृषि उपकरण आदि के लिए पैसे ही नहीं हैं। उनके अनुसार यह 1989 के लोकतन्त्र समर्थक आन्दोलन के बाद की सबसे गम्भीर समस्या है।

पुलिस-फ़ौज को चाक-चौबन्द रहने का आदेश

ग़रीबी-बेरोज़गारी से तबाह-बदहाल मेहनतकश जनता के गुस्से से बचने के लिए चीन की नक़ली वामपन्थी सरकार ने सेना को किसी भी उभार, धरने-प्रदर्शन आदि के ज़रिये समाज में फैलने वाली अशान्ति से निपटने के निर्देश दिये हैं। फ़रवरी के पहले सप्ताह में, चीन के राष्ट्रपति हू जिन्ताओ ने सेना को आदेश दिया कि वह मन्दी के कारण बेरोज़गार होने वाले लोगों द्वारा अशान्ति फैलाने की कोशिशों से निपटने के लिए तैयार रहे और किसी भी क़ीमत पर (चाहे गोली ही चलाने पड़े – निहितार्थ) समाज में शान्ति बनाये रखे।

जो भी हो, पूँजीपतियों की तलवाचाटू सरकार जितने भी इन्तज़ाम कर ले, लेकिन वह जनता के कोप से लम्बे समय तक बची नहीं रह सकती। इतिहास का सबक यही है।

– सन्दीप

लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लम्बी लड़ाई की तैयारी में जुट जाओ!

(पेज 1 से आगे)

हो गयी है। चुनाव को सामने देख, अभी तो सरकार ने पूरा ज़ोर लगाकर कुछ लगाम लगायी है, लेकिन आने वाले महीनों में ये हालात और भी भयावह होने वाले हैं। दूसरी ओर, जनता की यह बदहाली किसी भी पार्टी के लिए कोई मुद्दा नहीं है। सारी चुनावबाज़ पार्टियाँ जानती हैं कि सत्ता में आने पर उनके पास भी कोई और विकल्प नहीं होगा, उन्हें भी यही सबकुछ करना है। इसलिए, महँगाई, बेरोज़गारी, छँटनी कोई चुनावी मुद्दा नहीं है। जनता को लुभाने-भरमाने के लिए इन पार्टियों के पास कोई नया नारा नहीं है।

आने वाले समय में जनता का असन्तोष आन्दोलनों के रूप में फूटेगा यह तय है, और ऐसे में सत्ता का और भी दमनकारी स्वरूप सामने आयेगा। नागरिक अधिकारों में और अधिक कटौती की जायेगी। आतंकवाद के नाम पर दो नये काले कानूनों से सरकार पहले ही खुद को लैस कर चुकी है। जनता के असन्तोष से ध्यान भटकाने के लिए अन्धराष्ट्रवाद की लहर और उभाड़ने की पूरी कोशिश की जायेगी। यह देशी शासकों के लिए भी मददगार होगी और पाकिस्तान के ज़रदारी-गिलानी के लिए भी।

चौतरफ़ा संकट के हालात में देश के भीतर जनता के आपसी संघर्ष भी तरह-तरह के मुद्दों पर फूटकर सामने आयेंगे। जब समाज के वास्तविक मुद्दों पर सही संघर्ष नहीं खड़े होते हैं तो जनता का असन्तोष और गुस्सा अनेक ग़ैर-मुद्दों पर फूट-फूटकर सामने आता ही है। शासक वर्ग अपने संकटों से ध्यान बँटाने के लिए जाति-धर्म-क्षेत्रीयता-भाषा जैसे सवालों पर लोगों की भावनाएँ भड़काने की पुरजोर कोशिश करते हैं।

ये हालात सच्चे क्रान्तिकारियों के सामने भी चुनौती पेश कर रहे हैं। उन्हें पूँजी की लूट से तबाह व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी प्रचार और भी तेज़ कर देना होगा, उन्हें यह समझाना होगा कि उनकी तमाम समस्याओं का कारण यह लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था है और अपने हक़ों के लिए कदम-ब-कदम लड़ते हुए समूची व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की तैयारी ही इस गुलामी से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है। एक ओर "वामपंथी" आतंकवाद और दूसरी ओर चुनावी दलदल में धँसने का विरोध करते हुए उन्हें आम जनता को क्रान्तिकारी ढंग से संगठित करने की राह पर आगे बढ़ना होगा। साथ ही उन्हें दशकों से चली आ रही लकीर की फकीरी छोड़कर देश-दुनिया की परिस्थितियों में आये नये बदलावों को समझना होगा, और सही ढंग से सर्वहारा का क्रान्तिकारी हरावल दस्ता बनना होगा तथा पूँजीवादी-साम्राज्यवाद विरोधी नयी समाजवादी क्रान्ति का परचम थामकर आगे बढ़ना होगा।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : डा. दूधनाथ, सुखविन्दर • सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 020 • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ